बुद्धगुणालङ्कार

रचयिता

वीदागम मैत्रेय महास्थविर

अनुवादक

भदन्त आनन्द कौसल्यायन



प्रकाशक

बुद्ध विहार, लखनऊ

बुद्धगुणालङ्कार

रचयिता

वीदागम मैत्रेय महास्थविर

अनुवादक

भदन्त आनन्द कौसल्यायन



प्रकाशक

बुद्ध विहार, लखनऊ

बुद्धगुणालङ्कार

रचयिता

वीदागम मैत्रेय महास्थविर

अनुवादक

भदन्त आनन्द कौसल्यायन



प्रकाशक

बुद्ध विहार, लखनऊ

प्रकाशक
भिक्षु प्रज्ञानन्द
बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क
लखनऊ

प्रथम संस्करण
मूल्य ५)



मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

समर्पण

गौर्वार्ह हडिपन्नल पञ्ञालोक महास्थविर

की

पुण्य-स्मृति में

पिरुवन् विदुलकर उपपति पदवि	दरु
हडिपन्नल अपे पञ्ञालोक	गरु
सगपत् यतिदु सिहिकोट तेवला	अंदुरु
मेम कव पोतिन् सरसमि कत्कय	सोंदुरु

प्रकाशकीय

जब पालि, प्राकृत और संस्कृत जैसी भाषाओं और उनके साहित्य के पठन-पाठन के विषय में समाज में ऊहापोह जारी है, तब यह स्वाभाविक ही है कि सुदूर सिंहल के बुदुगुणालंकार (बुद्धगुणालंकार) जैसे एक मान्य काव्य का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने-कराने की उपादेयता पर भी कोई जन प्रश्न-चिह्न लगायें।

जब श्री लंका के बारे में रामचरित मानस में गोसाईं तुलसीदास जी का कथन विद्यमान है कि 'लंका निशिचर निकर निवासा। तहँ कहँ सज्जन कर वासा' तो यह भी असम्भव नहीं कि कुछ प्राकृत-जन यह भी सोचें कि ऐसे देश और वहाँ के साहित्य में हम 'आर्य-जनों' के लिये ग्राह्य ही क्या हो सकता है!

किन्तु, सचाई यह है कि भारतभूमि से कुल २२ मील की ही दूरी पर, लगभग २५००० वर्ग-मील की परिधि में बसा हुआ सिंहल-द्वीप पिछले ३ हजार वर्षों से उत्तर-भारत से अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध रहा है। पिछले २२०० वर्षों से दक्षिण-भारत के तमिळ भाषा-भाषी दमिळों के साथ समय समय पर कटु-प्रसंग उपस्थित होते रहने पर भी भारत के साथ मैत्रीपूर्ण धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सम्बन्ध उत्तरोत्तर दृढ़ बनाये रखने की सिंहल जाति की भावना एक असलीयत है।

ऐतिहासिक युग में ही नहीं, वर्तमान युग में भी, आज की सिंहल जनता भाषा, भावना एवं सांस्कृतिक रूप से भारतीय जनता के साथ 'एक हृदय' बने रहने के लिये निश्चयात्मक रूप से प्रयत्नशील हैं—यह एक ऐसा कथन है कि जिसके लिये किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं। सिंहल का आज का साहित्य, संगीत, नृत्य तथा चित्र-कला आदि सभी हमारे कथन के असंदिग्ध प्रमाण हैं।

सिंहल की अर्वाचीन संगीत-पद्धति एवं नृत्य-कला भारत की प्रसिद्ध भातखण्डे पद्धति की नकल ही नहीं, प्रतिरूप है। वर्तमान सिंहल साहित्य भी अपने शब्द-भण्डार को बढ़ाने के लिये उत्तर भारतीय वाङमय की ओर ही नजर लगाये हुए है।

यह सब होने पर भी सिंहल-भाषियों की भी अपनी भावनायें हैं, अपनी मौलिक-चेतना है, अपना मौलिक-चिन्तन है, अपनी मौलिक-साधना है—और इन्हीं सब से परिचित होना भारतीयों—विशेषरूप से हिन्दी पढ़ने लिखने वालों—का कर्तव्य है। हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि हम अपनी अल्प सामर्थ्यानुसार इसी दिशा में कुछ सेवा करना चाहते हैं।

प्रस्तुत बुदुगुणालंकार (बुद्धगुणालंकार) अपने मूलरूप में किन्तु देवनागरी लिपि में अपने हिन्दी अनुवाद के साथ पाठकों के हाथों में सर्मपित है। इसमें बुद्ध के जीवन की एक सामान्य-घटना को १५वीं शती के एक महा-स्थविर द्वारा शुद्ध सिंहल में एक जन-प्रिय खण्डकाव्य का रूप दे दिया गया है। आशा है सिंहल-भाषियों की भांति हिन्दी पाठकों के लिये भी यह काव्य श्री समान रूप से प्रिय सिद्ध होगी।

सिंहल वाङमय के इस ग्रन्थ-रत्न का अनुवाद पूज्य आनन्द कौसल्यायन जी के ही हाथों हो सका—इसकी हमें बड़ी प्रसन्नता है। लखनऊ का बुद्ध-विहार सिंहल और भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध दृढ़तर बनाने में अपेक्षित सेवा करता रहे और इसमें भदन्त जी की लेखनी निरन्तर सहायक रहे—यही कामना है।

प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित करने में श्री लंका के सांस्कृतिक मंत्रालय से हमें जो आर्थिक सहयोग मिला है उसके लिये हम सिंहल के सांस्कृतिक मन्त्रालय के विशेष ऋणि हैं। हिन्दीतर भाषा भाषी राज्य होकर भी हिन्दी प्रकाशनों के प्रति श्री लंका की यह उदाराशयता निश्चित रूप से अभि-नन्दनीय है। उनकी यह 'भारत तथा सिंहल के सांस्कृतिक सम्बन्धों' को दृढ़तर बनाने की भावना अमर बनी रहे। जय-हिन्दी। जय सिंहल।

११-११-६० **गलगेदर प्रज्ञानन्द**

विषय-सूची

प्रस्तावना

किसी भी जाति की मानसिक-सामर्थ्य और मौलिक चेतना-शक्ति का लेखा-जोखा लेना हो तो उसकी भाषा से परिचय प्राप्त करना योग्य है और यदि उसके यथार्थ इतिहास की जानकारी प्राप्त करनी हो तो उसके साहित्य से परिचय प्राप्त करना अनिवार्य है ।

सिंहल-द्वीप की सिंहल भाषा के बारे में कुछ समय तक यही विवाद चलता रहा है कि वह तमिळ भाषा की तरह द्रविड़ परिवार की भाषा है वा हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि उत्तर-भारतीय भाषाओं की तरह आर्य-परिवार या हिन्द-यूरोपीय परिवार की ? विद्वानों का अब यही सुनिश्चित मत है कि भारत की दक्षिण भाषाओं के भी और दक्षिण में होने के बावजूद सिंहल भाषा एक आर्य-भाषा है ।

प्रत्येक भाषा का आधार उसके शब्द समूह को और उनका भी मूलाधार उस भाषा की वर्णमाला को ही माना जायगा। इस दृष्टि से सिंहल भाषा के दो रूप हैं--(१) शुद्ध-सिंहल तथा (२) मिश्र सिंहल ।

शुद्ध सिंहल में अक्षरों की संख्या केवल बत्तीस रही है। किन्तु जिस वर्तमान मिश्र-सिंहल ने पालि, संस्कृत ही नहीं, बल्कि अन्य अनेक दूसरी भाषाओं से भी उपयुक्त शब्दों को लेकर अपने शब्द-भण्डार को भरा है, उस वर्तमान सिंहल में वर्णों अथवा उनके लिखित रूप अक्षरों की संख्या पूरी चौवन है ।

हिन्दी में हम 'ए' 'ऐ' से ही 'अय', 'अैय' का काम लेते हैं, किन्तु सिंहल में इन दोनों भिन्न उच्चारणों के लिये दो भिन्न अक्षर हैं। बुदुगुणालंकार

(=बुद्धगुणालंकार) को नागरी अक्षरों में लिखते समय हमारे सामने यह कठिनाई बराबर बनी रही कि इन दोनों उच्चारणों को कैसे लिखें ? पहले तो हम ने दो अतिरिक्त चिह्न जोड़ने का विचार किया। क्योंकि सभी अक्षर वर्णमाला के वर्णों के चिह्न मात्र ही तो हैं। किन्तु बाद में सोचा कि नये उच्चारणों के लिये नये चिह्नों का उपयोग ठीक है। यह 'अय', 'अैय' उच्चारण हिन्दी के लिये कोई नये उच्चारण नहीं हैं। हम हिन्दी में इन्हें यथावश्यकता 'ए', 'ऐ' से ही व्यक्त करते आये हैं। तब नये चिह्नों की क्या आवश्यकता ? भाषा के जानकार वैसे शब्दों का सही उच्चारण जानने के कारण उन्हें ठीक ठीक पढ़-पढ़ा ही लेंगे।

जहां तक सिंहल भाषा की वर्तमान लिपि की बात है वह भी प्राचीन भारतीय लिपि 'ब्राह्मी' का ही उसी प्रकार विकसित तथा परिवर्तित रूप है जैसे सभी भारतीय भाषाओं की अन्य समस्त लिपियाँ ?

आकार-प्रकार में सिंहल लिपि उत्तर भारतीय लिपियों से समानता न रख कर दक्षिण भारत की तमिळ, तेलगु, कन्नड़ तथा मळयाळम लिपियों से अधिक समानता रखती है। कदाचित इसका एक कारण यह भी माना ही जा सकता है कि प्राचीन काल में उत्तर-भारत में जितने भी ग्रन्थ लिखे जाते थे वे भोज-पत्रों पर स्याही और सामान्य कलम से। किन्तु दक्षिण भारत में जो ग्रन्थ लिखे जाते थे वे ताड़-पत्रों पर और लोहे की क़लम से। ताड़पत्रों पर लोहे की क़लम से सीधी लकीर खींची ही न जा सकती थी। असम्भव नहीं कि लेखन सामग्री के ही प्रभाव से सिंहल लिपि भी दक्षिण भारत की अन्य लिपियों के समान गोलाकार हो गई हो।

सिंहल लिपि का वर्तमान रूप कोई पांच सौ वर्ष पुराना कहा जा सकता है।

जहां तक भाषा की बात है सिंहल भी निर्विवाद रूप से एक देशी प्राकृत मात्र ही है। उसके शब्द-भण्डार का अधिकांश मागधी भाषा से ही आया

प्रतीत होता है। आरम्भिक शताब्दियों में सिंहल भाषा में मागधी और संस्कृत शब्द व्यवहृत नहीं होते थे। बाद में सिंहल-भाषा में संस्कृत शब्दों का प्रचुरता से व्यवहार होने लगा। तेरहवीं शताब्दी के बाद से तो द्रविड़ शब्दों और सोलहवीं शताब्दी के बाद से पुर्तगीज, डच और अंग्रेजी शब्दों तक से सिंहल भाषा ने अपने शब्द-भण्डार को काफी समृद्ध किया है।

और जहां तक प्राचीन समय की बोल-चाल की सिंहल का प्रश्न है, उसमें तो कदाचित् कोई व्याकरण ही नहीं रहा। कम से कम इस समय कोई भी अति प्राचीन व्याकरण विद्यमान नहीं। सिंहल का प्रथम व्याकरण शायद ईसा की तेरहवीं शताब्दी में ही लिखा गया।

शुद्ध सिंहल——जिस में संस्कृत शब्दों का व्यवहार नहीं हुआ है——का एक नमूना हम तेरहवीं शताब्दी के ही व्याकरण-ग्रन्थ सिदत्-संगरा (=सिद्ध +अर्थ+संग्रह) से दे रहे हैं——

"सन सन्द लिंग विबत् समस्पिय वि पस किरिय लोप देस अगम् पेररु देर पेरुलि वैडि अडु निसा नियम् अनियम अविदुमन विदि वी विसि वैदुरुम् वियरण विदि सपया।"

इस का हिन्दी रूपान्तर इतना ही है कि पुराने आचार्यों ने शब्द-साधन के सिलसिले में २० प्रकार की व्याकरण विधियों की चर्चा की है। कौन सी बीस ? संज्ञा, सन्धि, लिंग, विभक्ति, समास, प्रकृति (=धातु), प्रत्यय, क्रिया, लोप, आदेश, आगम, पूर्व-रूप, द्वि-रूप, विपर्यास, वृद्धि, हानि, निपात, नियम-विधि, अनियम-विधि तथा अविद्यमान-विधि।

यद्यपि सिदत् संगरा ने संस्कृत-शब्दों का व्यवहार न करने की कसम खा रखी थी तो भी सिंहल व्याकरण के सामने संस्कृत व्याकरण का अनुसरण करने के अतिरिक्त दूसरा उपाय न था।

अब हम देखें कि मिश्र-सिंहल ने संस्कृत शब्दों का व्यवहार किस

उदारता से किया है ? १३ वीं शताब्दी के ही 'पूजावलिय' सदृश ग्रन्थ इसके नमूने पेश करते हैं। एक उद्धरण है--

"सुरभि सुगन्ध पुष्पोहार समलंकृतवू भूमि भाग ऐ (अय) ति सुगन्ध गन्ध कुटियेहि वैडहिंद महाकरुणा समापत्तिय समवदन सेक। अत्यन्त परिशुद्ध वू तमंवहंसेगे दिव्य श्रोतधातुवेन् दम सभामण्डपयेहि उपन्नावु ए कथास्वरूपय असावदारा।"

इस उद्धरण से क्या आप को ऐसा नहीं लगता कि यह तो सिंहल में संस्कृत शब्दों का मिश्रण न होकर संस्कृत में ही सिंहल के विभक्ति-प्रत्यय जोड़ दिये गये हैं ? आधुनिक हिन्दी में इन वाक्य-द्वय का अर्थ है--

"सुरभि सुगन्ध पुष्पोहार से समलंकृत भूमि भाग वाली सुगन्धकुटी में बैठकर भगवान् बुद्ध महाकरुणा भावना में ध्यानारूढ़ हुए। उन्होंने अपने अत्यन्त परिशुद्ध कानों से धर्म सभा मण्डप में हुई बात चीत सुनी।"

जहाँ तक लिखित साहित्य की बात है ९ वीं शताब्दी से पूर्व का लिखा हुआ कोई भी सिंहल ग्रन्थ इस समय प्राप्य नहीं है। 'दळदा-वंश' तथा 'बोधिवंश' आदि ग्रन्थ चौथी शताब्दी तक में लिखे गये बताये जाते हैं। किन्तु वे अब प्राप्य नहीं हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से सिंहल द्वीप का साहित्य भी अन्य भाषाओं के साहित्य की ही तरह तीन कालों में बांटा जा सकता है--(१) प्राचीन काल अथवा पुरान काल (२) द्वितीय काल अथवा मध्यकाल, (३) तृतीय काल अथवा नवीन काल।

प्राचीन काल में सिंहल-द्वीप में जो अधिकांश पुस्तकें लिखी गईं वे पालि में। छठी शताब्दी के राजा कुमार दास कृत जानकी-हरण सदृश काव्य जैसे एकाध ग्रन्थ संस्कृत में और अभिधर्मार्थ-संग्रह सन्नय जैसे कोई कोई ग्रन्थ मिश्र-सिंहल में।

शुद्ध सिंहल में लिखे गये जिन दो ग्रन्थों का पता लगता है उनमें एक है

सियवसलंकार (स्वभाषालंकार) और दूसरा होगा मयुर-सन्देश अर्थात् मयूर सन्देशा इन दोनों ग्रन्थों में से भी अब एक ही प्राप्य है।

मध्यकाल में जो अनेक ग्रन्थ लिखे गये उनमें 'सन्देश' ग्रन्थों की काफी संख्या है। लगता है 'मयूर-सन्देश' के महान् कवि ने जो परम्परा आरम्भ की उत्तरकालीन कवियों ने उसे पूरी पूरी तरह निभाया। इस काल में शुद्ध सिंहल के ग्रन्थों के समान ही मिश्र-सिंहल के ग्रन्थों की भी इतनी अधिक रचना हुई कि उसका अवश्यम्भावी परिणाम यही हुआ कि वर्तमान सिंहल भाषा एक बड़ी हद तक संस्कृत-भार-वाहिनी बन गई।

१६ वीं शताव्दी से आरम्भ होने वाले वर्तमान काल के साहित्य पर संस्कृत का यह प्रभाव और भी बढ़ गया।

'बुद्धगुणालंकार' नामक काव्य का रचना काल है बुद्ध वर्ष २०१५ अर्थात् ईसवी सन् के हिसाब से पन्द्रहवीं शताब्दी। इस तरह से यह सिंहल-साहित्य के उत्तर-मध्यकाल की रचना ही मानी जायगी।

सौभाग्य से इस ग्रन्थ के रचियता के बारे में कोई वाद-विवाद नहीं। बुद्धगुणालंकार के ही अन्तिम छन्द में उन्हें महानेत्र प्रासादमूल (विहार) के अधिपति मैत्रेय महास्थविर कहा गया है। इन्हीं महास्थविर की दूसरी अत्यन्त लोक-प्रिय रचना लो-वैड संग्रा (=लोकार्थ संग्रह) के अन्तिम छन्द में उन्हें वीदागम विहार के मैत्रेय महास्थविर स्वीकार किया गया है।

इन्हीं महास्थविर की एक काव्यादर्श के ढंग की तीसरी रचना भी है जिसका नाम है मिणि मल् (=माणिक्य माला)।

इन तीनों रचनाओं में लोकार्थ संग्रह प्रथम और यह बुद्धगुणालंकार अन्तिम रचना माननी चाहिये।

इस काव्य का कथाभाग अत्यन्त सरल और संक्षिप्त है। **सर्वप्रथम** त्रिरत्न वन्दना। ग्रन्थरचना का उद्देश्य बुद्धगुणानुस्मरण मात्र है—

कय नम् असा रय
बव नम् बयंका रय
कियनुव दिवा रैय
कियम् बुदुगुण अलंका रय

[शरीर निस्सार है। भव भयंकर है। रात दिन बुद्धगुणानुस्मरण के लिये बुद्धगुणालंकार (ग्रन्थ) की रचना करता हूँ]

कथा वैशाली नगर के अनुपम वर्णन से आरम्भ होती है। वहाँ के लिच्छवि राजाओं के बारे में लिखा है—

दुसिरि सित नैव ति
रजनीति दत् गुणै ति
मैद हत् लेस पैव ति
ए रज लि च् च वि निरिन्दु नम् वे ति

[जिनका चित्त दुश्चरित्र से विरत था, जो राजनीति के जानकार तथा गुणवान् थे—ऐसे ये लिच्छवी राजागण सभी प्रकार के प्राणियों के प्रति मध्यस्थ-भाव से रहते थे।]

किन्तु किसी के भी सब दिन समान नहीं रहते। इसी न्याय से उन सर्वगुण सम्पन्न लिच्छवियों की वैशाली नगरी पर भी एक बार बड़ी आपत्ति आई—

देवियन् गतेहि दि लि
दिसि मेन् जरा विलिपि लि
ए नुवर पवा क लि
कलेक दुब्बिक् हकेक् विय क लि

[जैसे देवताओं के प्रकाश मान शरीर में भी बुढ़ापे की झुरियां पड़ जाती

हैं, उसी प्रकार एक समय वह वैशाली नगर भी दुर्भिक्ष रूपी दुःखके वशीभूत हो गया।]

दुर्भिक्ष-भय ही नहीं वैशाली नगर रोग-भय तथा अमनुष्य (=यक्ष-प्रेतादि)–भय का भी शिकार हो गया था।

जनता न एकत्रित हो राजागणों से इस दुःख को दूर करने का उपाय करने के लिये कहा। राजागणों ने मन्त्रि-मण्डल में विचार-विमर्श किया। एक मन्त्री ने पूरण-काश्यप, ककुध-कात्यायन, अजित केस-कम्बल, निगण्ठनाथ-पुत्र, सञ्जय वेल्लट्ठिपुत्र, तथा मक्खली गोशाल आदि के बारे में कहा––"हे स्वामी चन्द्र! यदि इन सब 'बुद्धों' की ठीक तरह से महान पूजा की जाय तो उस नगर के उपद्रव तुरन्त दूर हो जायें।"

एक दूसरे मन्त्री का कहना था––"इन झूठ से ही पेट पालन करने वाले जड़ मूर्खों का त्याग कर, चारों वेदों के अखण्ड जानकार ब्राह्मणों को मँगवाकर उन से दुनिया का कल्याण करावें।"

एक तीसरे मन्त्री का मत था––"झूठे वेद मन्त्रों की रचना करने वाले जनता को सदैव पथ-भ्रष्ट करने वाले, मिथ्यादृष्टि ब्राह्मणों से लोगों का कब कल्याण हुआ है?"

यह मन्त्री देव-वाद का प्रखर विरोधी प्रतीत होता है––

नरलोवै देन पुद ट
रिसि बत दोरिन् दोरसि ट
सुर यदि यनु कुम ट
दुगी याचकयन्ट ए निव ट

[जो मनुष्य-लोक में आकर दर दर भटक कर हम लोगों द्वारा दी गई पूजा बड़ी रुचि से ग्रहण करते हैं ऐसे नीच दुःखी भिखमंगों को 'देवता' या 'सुर' क्यों कहा जाय?]

वह मन्त्री ब्राह्मण-वाद का भी कट्टर विरोधी है ––

गेण बमुणन् क ता
करवन याग मे स ता
सुवन्दैल वी प ता
अकुरु वपुरण वैन्न निय ता

[ब्राह्मणों की बात का विश्वास कर लोगों का यज्ञ करना करवाना निश्चित रूप से ऐसा ही है जैसे कोई सुगन्धित शाली की कामना से (खेत में) कंकर-पत्थर रूपी बीज बोये।]

इस प्रकार कुछ दूसरे मन्त्रियों ने 'शिव' और 'विष्णु' की पूजा करने वालों को खरी खोटी सुनाने में कसर नहीं रखी।

अन्त में एक मन्त्री ने बुद्ध का गुणानुवाद आरम्भ किया यह कह कर––

मेर गिरि सरि गिरे क्
रिवि सन्द सदिसि पह ने क्
नैत सिन्दु सरि सरे क्
ए मेन् नैत मुनिन्दु सरि उतुमे क्

[मेरु पर्वत के समान पर्वत नहीं, सूर्य-चन्द्र के समान प्रदीप नहीं, समुद्र के समान सरोवर नहीं तथा मुनीन्द्र (बुद्ध) के सदृश कोई दूसरा उत्तम (-जन) नहीं।]

उस मन्त्री का कहना था––

मिस दिटु भुलु पु ळे
अटङ्ग मङ्ग बिजु व पु ळे
दहम् गङ्ग दिय ळे
ओवुन् गेनि सेत दियत पत ळे

[तथागत ने मिथ्या-दृष्टियों की जड़ें उखाड़कर अष्टांगिक-मार्ग रूपी बीज का आरोपण किया और क्योंकि उन्होंने धर्म की नदी बहाई इसलिये उन्हीं से संसार में शान्ति का प्रसार हुआ।]

तथागत का धर्म तो लोकोत्तर था ही, बाद के श्रद्धा-प्रगल्भ बौद्ध धर्म में बुद्ध के शरीर को भी लोकोत्तर समझने की जो मान्यता प्रचलित हो गई थी, उसको 'बुद्धगुणालंकार' के रचियता ने उसी रूप में अंगीकार कर लिया है। तथागत के शरीर का वर्णन करते हुए कवि महास्थविर का कथन है——

दसट रियनक् ग त
रैगेनै अबलुव अैतुळ त
यन सैतपेत इन्दि त
समत ए मुनि मिसक वेन नै त

[अट्ठारह हाथ का शरीर लेकर भी यदि कोई सरसों के अन्दर आ जा सकता है, शयन कर सकता है तथा बैठ सकता है तो यह सामर्थ्य तथागत के अतिरिक्त और किसी में नहीं है।]

हमें तो यह कथन केवल 'असंभव को भी संभव' कर दिखाने की तथागत की सामर्थ्य का उल्लेख मात्र प्रतीत होता है। किन्तु अनेक लोग इस कथन में यह मान्यता भी समाविष्ट समझते हैं कि तथागत का शरीर अट्ठारह हाथ का था।

तब किसी भी घर में आना-जाना कैसे होता था? उत्तर विद्यमान है——

एलिपत मिटि वै येयि
उडेलिपत हो उड ययि
सत सित तुटु वै येयि
मुनिन्दु नो नैमीमै गेट वैद येयि

[तथागत यदि किसी ऐसे घर में पधारते थे जिसका दरवाजा छोटा हो तो या तो चौखट की नीचे की लकड़ी नीचे चली जाती थी या चौखट की ऊपर की लकड़ी ऊपर उठ जाती थी। तथागत बिना झुके ही प्राणियों के चित्त को प्रसन्न करते हुए घर में प्रवेश करते थे।]

यदि यह सब एक 'कवि' की आँख को दिखाई देने वाला 'दर्शन' मात्र है तो हमें इस काव्य-भाषा के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना। अन्यथा ऐतिहासिक तथ्यता के वर्णन की दृष्टि से तो इसकी अयथार्थता स्पष्ट ही है। स्वयं पालि में 'सुगत विदान विदत्ति' एक पुस्तिका प्राप्य है जिसमें इस मान्यता का कि भगवान् बुद्ध का शरीर १८ हाथ का था कड़ा विरोध किया गया है। इस पूर्व-पक्ष को अमान्य ठहराने के लिये दिये गये कुछ कारण इस प्रकार हैं—

(१) १८ हाथ का शरीर किसी यक्ष या प्रेत के अधिक उपयुक्त जँचता है, किसी सर्वाङ्ग सुन्दर मानवीय बुद्ध-शरीर के नहीं।

(२) संयुक्त निकाय में इसका उल्लेख है कि भगवान् बुद्ध ने महाकश्यप के साथ अपने चीवर की अदला-बदली की थी। यदि तथागत का अपना शरीर १८ हाथ का होता तो वह एक सामान्य शरीर के महाकाश्यप महास्थविर के साथ अपने चीवर की अदला-बदली कैसे करते ?

(३) दीर्घनिकाय के ही सामञ्ञफल सुत्त में लिखा है कि जब अजातशत्रु राजगृह के आम्रवन में पहुंचा तो वह संघ के बीच बैठे भगवान् बुद्ध को पहचान तक न सका था। राजा ने वैद्य जीवक से कई बार प्रश्न किया कि संघ के बीच विराजमान बुद्ध कौन से हैं ? अन्त में जब राजा स्वयं नहीं ही जान सका तो जीवक ने ही उसे बताया। यदि तथागत का शरीर १८ हाथ का होता तो अजातशत्रु को उन्हें पहचानने में क्या कठिनाई होती ?

(४) संयुक्त निकाय का ही उल्लेख है कि जब स्थविर पुक्कसाति ने भगवान् बुद्ध को देखा था तो वह उन्हें पहचान न सका था। उसने उन्हें

'मित्र' कहकर सम्बोधित किया था। जब उससे पूछा गया––"तुम किस का अनुगमन करते हो ?" उसका उत्तर था––"मैं श्रमण गौतम के धर्म का अनुगमन करता हूँ।" तब भगवान् बुद्ध ने पूछा––"क्या तुमने श्रमण गौतम को देखा ? और यदि देखो तो क्या पहचान सकोगे ?" पुक्कसाति का उत्तर था––"नहीं"।

(५) भगवान् बुद्ध ने हाथी के पावों को सभी के पाँव से बड़ा कहा है। यदि भगवान् बुद्ध स्वयं १८ हाथ के होते तो उनका यह कहना अयथार्थ होता क्योंकि तब उनका अपना पाँव ही शायद हाथी के पांव से भी बड़ा होता।

(६) सुन्दरिक भारद्वाज जब भगवान् बुद्ध के लिये कुछ भेंट लाया तो वह अत्यन्त समीप आने तक भी भगवान् बुद्ध को पहचान न सका था। तब भगवान् ने अपना ढका सिर उघाड़ लिया था। यदि भगवान् बुद्ध का शरीर १८ हाथ का होता तो क्या सुन्दरिक भारद्वाज उन्हें दूर से ही न पहचान लेता ?

(७) अनुश्रुति है कि एक उपासिका ने भगवान् बुद्ध को महाकाश्यप स्थविर समझ लिया था। उसने महाकाश्यप स्थविर के लिये खास तौर से तैयार किया हुआ भोजन भगवान् बुद्ध को ही दान कर दिया। जब महाकाश्यप भिक्षाटन के लिये आये, तब उपासिका को अपनी गलती मालूम हुई। वह बुद्ध के पीछे दौड़ी और अपना दिया हुआ दान भगवान् बुद्ध से वापिस ले उसे पुनः महाकाश्यप को दिया। इस घटना से महाकाश्यप के हृदय को बड़ी चोट पहुँची। वे हिमालय के जंगलों में जाकर रहने लगे और तथागत का परिनिर्वाण हो चुकने तक वहीं रहे। भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद ही वे हिमालय के जंगलों से बाहर आये।

(८) भगवान् बुद्ध का प्रसिद्ध उपदेश है कि मैं इसी छः फुट के शरीर में दुख का अन्त करने की शिक्षा देता हूँ। वे कदाचित् ऐसा भी नहीं ही कहते यदि उनका अपना शरीर १८ हाथ का होता।

(९) वेरञ्जा के अकाल के समय आनन्द स्थविर ने भगवान् बुद्ध तथा अन्य भिक्षुओं के भोजन की व्यवस्था की। यदि तथागत का शरीर १८ फुट का होता तो उनकी भोजन-मात्रा भी विशेष होनी चाहिए थी, किन्तु सामान्य मात्रा का ही उल्लेख है।

(१०) जब भगवान् बुद्ध ने दो सप्ताह के लिये आरण्य में एकान्त शयनासन स्वीकार किया तो एक भिक्षु अपने सामान्य पात्र में भिक्षाटन कर, जो मिलता था उसी से भगवान् बुद्ध की सेवा करते थे। यदि भगवान् बुद्ध का शरीर विशिष्ट होता तो उनके लिये भोजन की यह मात्रा भी अपर्याप्त ही होती।

(११) विनय पिटक में भिक्षुओं के चीवर आदि तथा भिक्षुओं के निवास आदि के लिये कुटियाँ इत्यादि बनाने के जो प्रमाण दिये हैं वे भी इसी बात को स्पष्ट करते हैं कि भगवान् बुद्ध और उनके समकालीन लोगों के शरीर भी आज के लोगों के शरीरों जैसे ही थे।

(१२) इधर पुरातत्व-विदों ने जेतवनाराम की खुदाई की है। वहाँ भगवान् बुद्ध की गन्धकुटी तक भी मिल गई है। वह कुटी भी किसी सामान्य जन के रहने के लिये बनी प्रतीत होती है।

हमने यह चर्चा थोड़े विस्तार से इसीलिये की कि इस बुद्धिवाद प्रधान श्रेष्ठ काव्य में हमें बुद्ध के शरीर को भी लोकोत्तर मान लेने का पक्ष ही बहुत दुर्बल जँचा।

बुद्ध के गुणों के वर्णन में ही उन की दानपारमिता आदि पारमिताओं की पूर्ति का अनिवार्य उल्लेख है।

इसके आगे बुद्ध के अर्हत आदि नौ गुणों का अनुस्मरण है।

आगे चलकर बुद्ध के शरीर के बत्तीस लक्षणों का वर्णन है। यहाँ स्पष्ट रूप से बुद्ध के शरीर को व्याम मात्र ही स्वीकार किया गया है—

मुलु तुन् लो वि यत्
दनयन् करण नो वि यत्
मुनिन्दुन्गे क यत्
दिगिन् एक पमण वेयि बम्ब यत्

[तीनों लोकों के सभी पण्डितों को निस्तेज कर सकने वाले मुनीन्द्र का शरीर लम्बाई में व्याम मात्र था।]

इसके आगे तथागत द्वारा किये गये चमत्कारों का वर्णन भी 'कवि' की स्वाभाविक अतिशयोक्तिपूर्ण भाषा में ही है।

इसके आगे देवताओं के गुणों की तुलना में बुद्ध के अनन्त गुणों का वर्णन है।

आगे चलकर उसी अमात्य ने भगवान् बुद्ध के नगर और कुल का वर्णन भी अत्यन्त ओजस्वी भाषा में किया है।

और आगे चलकर सिद्धार्थ के पिता राजा शुद्धोदन और उनकी जननी महामाया देवी की गुण-श्लाघा है।

यशोधरा देवी के रूप-लावण्य का वर्णन करते समय तो कविवर की भाषा काफी स्वच्छन्द ही नहीं, एक स्थल पर जैसे कुछ फिसल भी गई है। कितना तीखा उपहास है ! यशोधरा के 'पीन-पयोधरों' का वर्णन मात्र है--

गन रन् कुम्बु अयु रु
डुटु डुटु वनट पियक रु
कळोत् मुन् पियो वु रु
बम्बा बम्बसर वेद ? तहवु रु

[घने स्वर्ण-कुम्भ के समान, हर द्रष्टा का चित्त आकर्षित करने वाले, यशोधरा के पयोधरों का यदि ब्रह्मा ने निर्माण किया होगा तो क्या उसका ब्रम्हचर्य सुरक्षित रहा होगा ?]

आगे परम्परा-मान्य अभिनिष्क्रमण की कथा अत्यन्त संक्षेप में है। इसका कारण शायद यही हो सकता है कि इस सूखे ऐतिहासिक वर्णन में कवि-कौशल दिखाने की विशेष गुंजायश नहीं।

अब सिद्धार्थ को 'बोधि' की प्राप्ति हो चुकी है। ब्रह्मा की प्रार्थना स्वीकार कर वे वाराणसी की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। वाराणसी में धर्म चक्र प्रवर्तन कर और इकसठ अर्हत भिक्षुओं को धर्मप्रचारार्थ नाना दिशाओं में भेज तथागत राजगृह पधारे। वहाँ राजा बिम्बिसार द्वारा बनवाया गया 'वेळुवन' प्रतिग्रहण किया।

वैशाली के लिच्छवियों ने तथागत से उन के नगर में पधारने की प्रार्थना करने के लिये दूत भेजे। तथागत का वैशाली गमन। तथागत की अद्भुत विदाई। लिखा है––

तद दुक् दुर ल न् नोया
सग मोक् सैप दे न् नोया
मोहुम वेतैयि द न् नोया
वैन्द वैन्द बिय हे न् नोया

[भीषण दुःख दूर करने वाले, स्वर्ग मोक्ष रूपी सम्पत्ति दे सकने वाले यही भगवान् बुद्ध हैं––इस बात के जानकार लोग जमीन पर गिर गिर कर नमस्कार करते थे।]

तथागत के गंगावतरण का वर्णन कवि ने बड़े विस्तार से किया ही है।

अब तथागत वैशाली पहुंच गये हैं। उनके प्रताप से वैशाली में मूसलाधार वर्षा हुई, जिसका वर्णन कवि ने अत्यन्त सरल शब्दों में किया है––

वैसि वैस वतु रु विय
कुणप कुण हैम डु रु विय
ए पुर पिवितु रु विय
ए वर हैम तुरु लिय द कु रु लिय

[वर्षा होने से पानी बहने लगा। सारी गंदगी दूर हो गई। नगर पवित्र हो गया। उस समय सभी वृक्ष तथा लतायें अंकुरित हो गईं।]

नो हैर विल् वापी
गं हो द पुर वापी
मह गिम् नि वापी
सतुन् सित सतोस कर वापी

[तालाब और वापी तथा नद और नदियाँ सभी भर गईं। भयानक गर्मी शान्त हो गयी। प्राणियों का चित्त संतुष्ट हो गया।]

इसके आगे रतन-सुत्र द्वारा परित्राण धर्म-देशना के विस्तृत वर्णन द्वारा ग्रन्थ की 'इति' हुई है ।

मुनीन्द्र के गुणों का अपनी श्रद्धासिक्त, प्रासादगुण-पूर्ण भाषा में यथा-सामर्थ्य संगायन कर चुकने के अनन्तर कवि की एक मात्र अभिलाषा यही है कि लोग बुद्ध को नमस्कार करें। उनके गुण-स्कन्धों के प्रति श्रद्धावान् हों, उनकी शरण ग्रहण करें। उनके सद्धर्म को सुनने का अभ्यास करें। उनके द्वारा किये गये कल्याण-कार्यों का विचार करें। संसार का दुःख देख, इस दुःख से विरत हो। मिथ्या-दृष्टि रूपी क्लेशों (=चित्त मलों) में न पड़ उनके दर्शन की कामना करें। उपोसथ दिनों में उपोसथ-व्रत धारण करें। पांच शीलों की प्राणों के समान रक्षा करें। दस अकुशल-कर्म न करें। दस पुण्य-क्रिया-वस्तुओं (कुशल-कर्मों) को नित्य पूरा करें। पूर्व-चेतना आदि त्रिविध चित्त को पवित्र करें। नाना प्रकार की श्रेष्ठ वस्तुओं से बुद्ध-धातुओं

की पूजा करें। सभी हित-अहित प्राणियों के प्रति करुणा मैत्री की वृद्धि करते हुए स्वर्ग-मोक्ष सुख देने वाले मुनीन्द्र द्वारा उपदिष्ट पथ का अनुसरण करें।

× × ×

मैथिलीशरण गुप्त जी की 'यशोधरा' और राहुल जी की 'लंका' आदि कई पुस्तकों के हिन्दी से सिंहल-अनुवादों के प्रकाशित हुए रहने पर भी यह बात खटकती थी कि सिंहल से हिन्दी में कभी-कभी छुट-पुट रचनायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने के अतिरिक्त सिंहल की किसी भी विशिष्ट कृति का अभी तक सिंहल से हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित नहीं हो सका था। यह कदाचित् इस दिशा में एक विनम्र प्रथम प्रयास ही है।

यदि यह प्रयास हिन्दी के जानकारों की सिंहल-साहित्य के प्रति और सिंहल-साहित्य के जानकारों की हिन्दी-भाषा के प्रति रुचि की अभिवृद्धि में कुछ भी सहायक हो सका तो अनुवादक का श्रम व्यर्थ नहीं ही माना जायगा।

बुद्धगुणालंकार के जिन सिंहल टीकाकारों की टीकाओं से मुझे अपने अनुवाद में सहायता मिली, मैं उन सभी का अत्यन्त ऋणी हूँ।

लखनऊ के बौद्ध विहार के अधिष्ठाता अनुज भिक्षु प्रज्ञानन्द का भी, क्योंकि उन्हीं के उत्साह से यह पाठकों के हाथों तक पहुंच रहा है।

विद्यालङ्कार विश्वविद्यालय
१४–८–६०

विनीत
आनन्द कौसल्यायन

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

बुद्धगुणालङ्कार

त्रिरत्न नमस्कार

१. कुलुणु मेन् सत वे त
पतळ नैण सव् पद रु त
हेलि कळ लोवट से त
नितोर नमदिम् मुनिन्दु सरण त

अर्थ--सभी प्राणियों के प्रति करुणा की भान्ति, सभी (ज्ञेय) पदार्थों का ज्ञान रखने वाले तथा समस्त लोक को निर्वाण-मार्ग दिखाने वाले मुनीन्द्र (=भगवान बुद्ध) के चरणों में मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ।

२. लंकर ससर हि म्
दुरुकर केलेस बियगि म्
सिदुकळ युतु उतु म्
वन्दिम् नव लोव् तुरा सदह म्

अर्थ--संसार (=जन्म-मरण) की सीमा को समीप लाकर, क्लेशों (=चित्त-मलों) की भयानक ऊष्णता को दूर कर जिस नव उत्तम लोकोत्तर धर्म[1] की प्राप्ति इष्ट है, उस सद्धर्म को नमस्कार करता हूँ।

---

१. स्रोतापत्ति मार्ग फलादि आठ तथा निर्वाण।

३. किसि केनेकुन् पम ण
नोकळैकि गुणैति अपम ण
सतहट पिळिसर ण
वन्दिम् अदरिन् अरी सङ्गग ण

अर्थ—जिस आर्य संघ-समूह के असीम गुणों को कोई सीमित नहीं कर सकता, जो सभी प्राणियों का शरण-स्थल है, मैं उस संघ को भक्ति-पूर्वक नमस्कार करता हूँ।

४. बव सिन्दु पसु रुवन्
अव विय अन्दुरु हि रुवन्
पिरिगुण मह रुवन्
मेसे नम कर पुदा ते रुवन्

अर्थ—भव-सागर को पार करने के लिये नौका के समान, नरक-भयरूपी अन्धकार को दूर करने के लिये सूर्य्य के समान, महान गुणों रूपी रत्नों की राशि के आगार त्रिरत्न[1] को नमस्कार करता हूँ।

५. कय नम् असा रय
बव नम् बयंका रय
कियनुव दिवा रैय
कियम् बुदुगुण अलंका रय

अर्थ—शरीर निस्सार है। भव भयङ्कर है। रात-दिन बुद्धगुणानु-स्मरण के लिये, बुद्धगुणालङ्कार (ग्रन्थ) की रचना करता हूँ।

---

१. बुद्ध, धर्म तथा संघ।

६. मह किवि वरुन् पे र
पवसा नोपत् पर ते र
सुगतिन्दु गुण गैम्ब र
मेमा कियमी सितनु वैर सै र

अर्थ--पूर्व समय के महान कविवर भी जब सुगत (=बुद्ध) के गुणों रूपी गहरे समुद्र का पार नहीं पा सके तो मेरा निस्संकोच उन गुणों के वर्णन करने का यह प्रयास कैसा है? उत्तर है--

७. सुवासू दहस क्
योदुन् गैम्बुरैति मुहुद क्
गोड केरेमि यि उद क्
लेहेनु कळ तैत् बैन्न दवसक्

अर्थ--मेरा यह प्रयास वैसा ही है जैसा उस अकेली गिलहरी का प्रयास था जो चौरासी हजार योजन गहरे समुद्र को उलीच कर स्थल बना देना चाहती थी।

८. एते कुडुवत् सो न्दिन्
पुरमी पिणक् नोम दिन्
मुनिन्दु गुण मुहु दिन्
बिन्दक् दक्वमि उदक ओकन्दिन्

अर्थ---ऐसा होने पर भी अनल्प पुण्यकर्म का भागी होऊंगा, सोच मुनीन्द्र (=बुद्ध) के गुणों रूपी सागर में से बूंद मात्र ही बड़े प्रीति-युक्त चित्त से निर्मल स्वरूप में प्रकाशित करता हूँ।

९. नुवणैतियेनि मे मा
बस दोस एतत् ए द मा
देसवन् पुट न मा
पमा नोव गनुव मुनि गुण मा

अर्थ—हे ज्ञानियो ! मेरे कथन में जो भाषा के दोष हों उनकी ओर ध्यान न दो, अपने दोनों कानों को झुकाकर, अविलम्ब बुद्ध गुणामृत का पान करो।

वैशाली-वर्णन

१०. सग सिरि अ साला
कळ युरु सोन्दुरु साला
सिरिन् सुवि साला
पवर नुवरेक् वी वि साला

अर्थ—स्वर्ग की शोभा का वर्णन सुनकर ही (मानो) जिनका निर्माण हुआ हो ऐसे सुन्दर भवनों से युक्त, ऐश्वर्य्यवान्, विशाल तथा श्रेष्ठ एक नगर था, जिसका नाम था वैशाली।

११. सत् समुदुर अग ळ
सत् गिरि पवुरु वटक ळ
सक्पुर मिस उदु ळ
एपुर सरि को द ? पुरेक् सक्व ळ

अर्थ—सात समुद्र जिसकी खाईं हैं और सात पर्वत जिसकी चहार-दीवारी हैं ऐसे उज्ज्वल शक्रपुर के अतिरिक्त समस्त चक्रवाल में दूसरा कौन-सा नगर है जो ऐश्वर्य्य में इस (वैशाली) नगर के समान हो।

१२. बबलन पैहै गिहि णि
वेन वेन देसिन् स पैमि णी
पबलु रन् मुतु मि णि
नोयेक् सल्पिल् सियेन् सुसैदिणि

अर्थ––नाना देशों से प्राप्त, प्रज्वलित प्रभा से युक्त मूँगों, स्वर्ण, मोती और माणिक्य की नानाविध सैकड़ों दुकानों से सुसज्जित था।

१३. गनरन् कोत् पैळ न्दि
बितु सितुवमिन् सित् बै न्दि
मिणि पह पैहै विहि दि
कोवे मावे सियेन् सिय सै दि

अर्थ––स्वर्णमय शिखरों से युक्त, मनोहर भित्तिचित्रों वाले, विस्तृत प्रकाश वाले माणिक्यों से सजे हुए छोटे-बड़े मार्ग (वैशाली) नगर के अलंकार थे।

१४. पुर वैसियन् ति ळी
केळिन केळिमेन् नियै ळी
दद इन् इन् वे ळी
केळी पुरम्बर रैसिन् बैब ळी

अर्थ––उस नगर के आकाश में ऊपर उठी ध्वजायें एक दूसरे से लिपटती हुई रश्मियों से चमकती हुई इस प्रकार क्रीड़ा कर रही थीं मानो वे असन्दिग्ध रूप से सन्तुष्ट चित्त नागरिकों के साथ क्रीड़ा कर रही हों।

१५. मनहर रुसिरि स र
देवियन् लेसिन् सुर पु र
उरयेन् उर पैहै र
नितोर महसेन सितिति ए नुवर

अर्थ—इन्द्रपुरी के देवताओं के समान, मनोहर रूप श्री से युक्त, एक दूसरे के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर उस (वैशाली) नगर की महान, सेनायें सदैव (तैयार) रहती हैं।

१६. हेन सेन से किपे न
तवसुन् लेसिन् निक्मे न
हैम रुपुसेन् दिन न
महत् गजसेन् सिटिति तैन तैन

अर्थ—गिरने वाली बिजली के समान क्रोध-प्रवृत्त, तपस्वियों के समान (धीरे) चलने वाले, शत्रुओं की सभी सेनाओं पर विजय प्राप्त करने वाले हाथियों की महान सेना उस (वैशाली) नगर में जहाँ-तहाँ उपस्थित थी।

१७. हसळ पस् दह रे
किसि दोस नोवैकि सिरु रे
यनेन निति ए पु रे
तुरङ्गसेन् वैनि तरङ्ग सयु रे

अर्थ—पाँच प्रकार की चाल (=धाराओं) की अभ्यस्त, किसी भी तरह के शारीरिक दोष से मुक्त, (वैशाली) नगर में नित्य आने-जाने वाली अश्वसेना वैसी ही थी जैसी समुद्र की लहरें हों।

१८. ए पुर रज मह व त
बन् रन् दे देन् पै है प त
सक् सन् गत् दिग त
नितर रतसेन् विरतवनु नै त

अर्थ——स्वर्णिम पताकाओं से अलंकृत उस नगर के राज-महामार्ग पर निरन्तर रथ-सेनाओं का——ऐसी सेनाओं का जिनके चक्रों के नाद ने दिशाओं को गुंजा दिया है——गमनागमन जारी है।

१९. सुर तुर सेन् कैं मै ति
देय यदियनट देन नि ति
लोवै परसिदु पिनै ति
नोयेक् महसल् कुलन्गेन् यु ति

अर्थ——कल्प-वृक्ष के समान याचकों को उनकी इच्छित-इच्छित वस्तुओं के देने वाले बहुत से लोक-प्रसिद्ध पुण्यवान् महासारवान् कुल[1] उस नगर में रहे।

२०. सुरङ्गन सिरिसि लु
वरङ्गन केळिन सन्द लु
लियगी कन् क लु
इमेक् नैत रङ्गन रङ्ग मण्डु लु

अर्थ——देवकन्याओं के सदृश शोभासम्पन्न स्त्रियों की क्रीड़ा-भूमि चन्द्रिकाशालाओं के कर्ण-प्रिय लय-युक्त गीतों के गान से समन्वित नृत्य-मण्डपों की (वहां) सीमा नहीं।

---

१. क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा वैश्य (=गृहपति)——ये तीन महासार-कुल कहलाते थे।

२१. अम तैन अैति सैप त्
एक तैन् कळेव् सिरिग त्
दैक दैक रिसि नुमु त्
नैतैयि यन सम्पतेक् एहि नै त्

अर्थ––ऐसा लगता है कि जैसे सभी स्थानों की सम्पत्ति की शोभा एक ही जगह इकट्ठी कर ली हो। उसे देखते रहने से रुचि की तृप्ति नहीं होती। ऐसी कोई सम्पत्ति नहीं है, जो वहां न हो।

२२. नन् वेस् नन् बर ण
सैपतिन् पिरुणु अपम ण
लिटि वयसेहि तरु ण
केसे मेतेकैयि येद्द नर गण

अर्थ––नाना प्रकार के भेष और आभरण धारण किये हुए, असीम सम्पत्तिशाली, तरुणों की जनसंख्या कैसे कही जा सकती है?

२३. सिहिल् दिय पिरु णु
पिय गैट पेळिन् दिलु णु
बिङगु दैल् विसुरु णु
वूय तैन तैन पियुम् पोकु णु

अर्थ––शीतल जल से भरी हुई, पौड़ियों से युक्त, भौंरों से गुन्जायमान पद्म-पुष्करणियाँ (वहाँ) स्थान-स्थान पर थीं।

२४. नलम्बळ नन् केहे ली
बन् मिणि किंकिणि मुतुदै ली
रन् वैट पहन् दि ली
दोरिन् दोर दन् देवन दन् ह ली

अर्थ—वायु-कम्पित ध्वजाओं से युक्त, बँधे हुए मणि-किंकिणी-मुक्ता जालों से युक्त तथा स्वर्ण-प्रदीपों से आलोकित दानशालायें—जहाँ दान दिया जाता था—दरवाजे-दरवाजे थीं।

२५. असुरसेन् तर मिन्
तैन तैन पैन अतर मिन्
रुपुमन् उपुर मिन्
सरण मह सेनेङग अविसरमिन्

अर्थ—असुर सेना की भांति, जहाँ-तहाँ कूद कर हाथ उठाती हुई और शत्रु के मान का मर्दन करती हुई, सशस्त्र विचरण करने वाली महान सेना वहाँ थी।

२६. गिजिन्दुन् तिमद गि लि
तुरंगुन् समग नो है कि लि
तबा बन् रनैकि लि
केळित तन्तन्हि गिलि अलिकुलि

अर्थ—ऐसे हाथी, जिनके तीन-तीन स्थानों से मद बह रहा है और जिन्होंने सोने की ज़ंजीरों को तोड़ दिया है असंकोचपूर्वक घोड़ों के साथ खेल रहे हैं। ऐसे समय स्थान-स्थान पर भौरों के झुण्ड उड़ रहे हैं।

२७. दैन गेन विद्दु सिय ल्
उनुनट वेमिन् पिळिम ल्
कियन रै दाव ल्
सैदिणि वेन वेन नोयेक् विदुहल्

अर्थ—सभी विद्याओं को सीख कर रात-दिन परस्पर एक दूसरे से भिन्न शिक्षा देने वाले (आचार्यों से युक्त) तरह-तरह के विद्यालय थे।

२८. विहिदि मिणि किर णय
दोर दोरेहि रन् तोर णय
निति सतोस कर णय
सिरिन् पिरितिरि एपुर देरणय

अर्थ—दरवाजे-दरवाजे मणि-किरणों की कान्ति बिखेरने वाले स्वर्णमय तोरणों से युक्त, नित्य संतोष देनेवाली उस (वैशाली) की धरती श्री से भरपूर थी।

२९. सतुरन् कळ निह ण्ड
एहि रिय सक्हि सक्ह ण्ड
वैजम्बेयि दसत मै ड
लेसिन् रळ गळ सयुर गत् ह ण्ड

अर्थ—वैशाली (के रथों) के पहियों का शब्द शत्रुओं को निश्शब्द करके समुद्र की लहरों की गर्जन के समान दस दिशाओं को मर्दित कर सर्वत्र व्याप्त था।

३०. पुर देरणत पि री
कुररोन् समग इति री
दिगत गोस् पैति री
पवति हय मिणि किंकिणि गिगि री

अर्थ—घोड़ों की माणिक्य-किंकिणियों की आवाज, उनके खुरों के साथ उठने वाली धूल से मिलकर नगर की धरती को पूर्ण करती हुई (दस) दिशाओं में व्याप्त हुई।

३१. पसङ्गतुरु नादे
गजसेन कुञ्च नादे
समग तुति नादे
एपुर दिव रैं एक नि नादे

अर्थ—पंचांगिक तूर्य-नाद, हस्ति-सेना का क्रौञ्च-नाद जब स्तुति-नाद के साथ मिल गया तो ऐसा मालूम दिया कि वैशाली रात-दिन एक ही शब्द से शब्दायमान रहती है।

३२. एव कव पोव किय न
तेपुलेन् पिरुणु हैम तैं न
उतुरु कुरु दिवयि न
वैन्न इसुरेन् ए पुर हैम दि न

अर्थ—'आओ, खाओ, पियो'—यही वचन सर्वत्र सुनाई देते थे। नगर का प्रत्येक दिन ऐश्वर्य्य में उत्तर कुरु-द्वीप के समान था।

३३. सुरन् पह सदि सिय
दिलि सत् रुवन् बितु सिय
सत् दहस् सत् सिय
सतक् रजमह पहय गैव सिय

अर्थ---देवताओं के प्रासाद के समान सप्त रत्नमय[1] सैंकड़ों दीवारों से सुशोभित सात हजार सात सौ सात राज महाप्रासाद उस में बने थे।

३४. केळिन पुर वैसि यन्
लोबवन तरम् देवि यन्
सव सिरिनि सैदि यन्
सैदिणि एपमण पोकुणु गेवु यन्

अर्थ---जिनमें नगर-निवासी क्रीड़ा करते थे, जिन्हें देखकर देवताओं के हृदय में भी लोभ पैदा होता था, ऐसी सभी प्रकार की श्री-शोभा से युक्त सात हजार पुष्करिणियों और सात सौ सात गृह-बाल-उद्यान भी उस में थे।

३५. निरिन्दुन् पेम् बैं दी
उनुन् वेत सित् पैहै दी
इन्दिनेन् एहि सै दी
बियेन् सेन् किसि दुकेक् नोव दी

अर्थ---उस (वैशाली) के राजागण प्रेमाबद्ध होकर परस्पर इतनी प्रसन्नता से रहते थे कि मानो उसी के भय के कारण वहाँ किसी भी प्रकार के दुःख का प्रवेश नहीं था।

---

१. स्वर्ग, रत्न, मोती, माणिक्य-वैडूर्य, मणि, और मूंगा।

३६. रैं देवेहि नितो रे
मिणि पह पैंहैय पैंति रे
दुरुवन गनदु रे
लोवैंति सवसिरि सपिरि एपु रे

अर्थ——उस नगर में समस्त लोक की समस्त श्री-शोभा विद्यमान थी। निरन्तर रात-दिन मणि-प्रासादों की प्रभा के विस्तीर्ण होने के कारण घनान्धकार के लिये अवकाश न था।

लिच्छवि राजागण

३७. सत् सिय दहस् सत्
सत् नरनिन्दुहु सम गोत्
सत् वग केरेहि मे त्
युत् व पवतित् सितिन् मैद ह त्

अर्थ——समान गोत्र वाले सात हजार सात सौ सात राजा सभी प्राणियों के प्रति मैत्री चित्त युक्त होकर मध्यस्थ-भाव से रहते थे।

३८. दुसिरि सित नैंव ति
रजनीति दत् गुणै ति
मैंदहत् लेस पैंव ति
एरज लिच्चवि निरिन्दु नम् वेति

अर्थ——जिनका चित्त दुश्चरित्रता से विरत था, जो राजनीति के जानकार तथा गुणवान थे——ऐसे ये लिच्छवी राजा-गण सभी प्रकार के प्राणियों के प्रति मध्यस्थ-भाव से रहते थे।

३९. कुल देटुवन् पैव ति
सेबेहि तेदणिन् नो दिले ति
वेन् वू सद दिले ति
रसिन् मुसु नुमुसु रन्से वे ति

अर्थ—जिस सभा में उनके माता-पिता, आचार्य्य आदि कुल-ज्येष्ठ रहते हैं उस सभा में उनकी तेजस्विता प्रकट नहीं होती, जहाँ वे नहीं रहते वहां उनकी तेजस्विता प्रकट होती है। उनकी तेजस्विता पारा मिश्रित स्वर्ण तथा पारा अमिश्रित स्वर्ण के समान थी।

४०. नो वळा वरद तन्
नो नैमी बसट मह तन्
विलसिन् सिय सु तन्
सतन् रकिनुय बला अैम तन्

अर्थ—छोटों (हीनों) की उपेक्षा न कर, बड़ों के (अनुचित) वचनों के सामने न झुक, वे सर्वत्र देख-भाल कर सभी प्राणियों की, अपनी सन्तान के समान रक्षा करते थे।

४१. नो मका कुल सिरि त्
नो तबाम देन दन्व त्
नो वडा अय बदु त्
नैगु सित् सेम दिय दीय को त्

अर्थ—(लिच्छवियों ने) कुल के परम्परागत आचार को बिना मिटाये, दाताओं ने दान-वृत्ति को बिना छोड़े, (शासन ने) टैक्स को बिना बढ़ाये, जगत में विजय-पताका को इच्छानुसार ऊंचा उठाया।

४२. गत उन् सबामय
बस उन्गे सबामय
इसुरेन् सबामय
सबानस् उन् उन् सबामय

अर्थ--लिच्छवियों के गात्र प्रभामय थे। उनके वचन सत्यमय थे। उनका ऐश्वर्य्य भाग्यमय था। इसलिये जिस सभा में वे हों वही सभा, सभा कहलाने के योग्य थी।

४३. अवाबिय अँव रू
सित् सत् गुणेन् सपि रू
दिगबित किविय रू
ओवुन् गुणसितुवसिन् तँवरू

अर्थ--जिन्होंने अपाय-भय को ढक दिया, जिनका चित्त शुभ गुणों से युक्त है, ऐसे कवियों ने दिशाओं रूपी दीवारों को उन लिच्छवियों के गुणों से चित्रित किया है।

४४. रन् रू सदि सियह
दैक दैक नोयन रि सियह
कन्कलु सुबै सियह
ओहु म नर देवि नमट निसियह

अर्थ--जो स्वर्ण-निर्मित मूर्ति से समानता रखते थे, जिन्हें देखते रहने से मन नहीं भरता था, जिनकी वाणी कर्णप्रिय थी वे (लिच्छवी) ही नरदेव शब्द के यथार्थ अधिकारी थे।

४५. हसिरेन् लोव ग रू
अयुरु सुरिन्दुन् पिळि रू
दस रज दम् दै रू
ओवुन् सरि वेति मे लोव कवुरू

अर्थ—रूप-शोभा की दृष्टि से लोक में विशिष्ट, सुरेन्द्रों के प्रतिरूप सदृश, दस राज-धर्मों[1] का पालन करने वाले उन लिच्छवियों के समान इस लोक में कौन होगा ?

४६. सक बिम पेर ळे मिन्
गैल बडु निसल केरे मिन्
पवतिन मेन् नो मिन्
तुमु दुक् विन्दिति सत रकि मिन्

अर्थ—रथ का पहिया उलट जाने पर जैसे कोई रथ में रखे हुए सामान को संभालता है उसी प्रकार (लिच्छवि राजागण) राष्ट्र (=सत्वों ?) की रक्षा के लिये स्वयं अप्रमाण दुःख उठाते थे।

४७. रोन् अैर गेण से मिन्
यन बिंगु लेसिन् कुसु मिन्
लोवट दुक् नोदे मिन्
गणिति अय पण्डुरु पेर निय मिन्

अर्थ—जिस प्रकार भौंरे (पुष्प को बिना कष्ट दिये) धीरे से फूल से रेणु ले जाते हैं, उसी प्रकार (लिच्छवि राजागण) लोगों को बिना कष्ट दिये पूर्व-परम्परानुसार ही उनसे आय (=टैक्स) वसूल करते थे।

---

१. दान, शील, परित्याग, ऋजुता, कोमलता, तपस्या, अक्रोध, अविहिंसा, सहनशीलता तथा स्थिरता।

४८. लुव द सिन्दु पेदे से
दिय नोगेण सिटि नैव से
दन नोगेण म तो से
सिटिति दनवत् दनन् सित से

अर्थ---जिस प्रकार समुद्र में फैंकी हुई नौका भी समुद्र जल ग्रहण नहीं करती, उसी प्रकार (लिच्छवि राजागण) धनियों के बीच में रहते हुए भी बिना उनका धन लिये प्रसन्नतापूर्वक रहते थे।

४९. पलगत् अतु न सा
पल गन्नवुन् विल सा
दन गैणुमक् नि सा
दहम् नो नसति दनन् वन सा

अर्थ---जैसे कुछ फल तोड़ने वाले, फल वाली शाखा को ही तोड़ डालते हैं, उनकी तरह से (लिच्छवि राजागण) धनियों का धन लेकर, उनका नाश कर (राज-) धर्म का नाश नहीं करते।

५०. सवणिन् असन ब स
नुवनिन् असव यन ले स
केरेती तमा ब स
यमक् नो योदति मिसक् निसि ले स

अर्थ---कानों से सुनने की बात को नयनों से सुनो कह कर अपनी आज्ञापालन कराने वालों की तरह (लिच्छवि राजागण) योग्य बात के अतिरिक्त, प्रजा को कभी किसी अयोग्य अनुचित कार्य्य में नहीं लगाते थे।

५१. देन' तुल् से इस ट
सतिन् वलकन वैस्स ट
येदेन महतुन् ह ट
देयक् नो योदति होनयन् ह ट

अर्थ---जिस वर्षा से बचने के लिये छाता लगाना योग्य है उस वर्षा से बचने के लिये जैसे कोई सिर पर हाथ रखें, वैसे लोगों की तरह (लिच्छवि राजागण) जो काम बड़े लोगों के करने का है, उसे छोटे लोगों को नहीं सौंपते।

५२. पर अङ्गनुन् दे से
बलन लो वैड पिणि से
गिम् रिवि मण्डल से
बलति अैय हकुलुवा दुक से

अर्थ---लोकार्थ सिद्ध करने के लिये यदि (लिच्छवि राजागण) कभी किसी पर-स्त्री की ओर देखते हैं तो आंखों को संकुचित कर बड़ी ही कठिनाई से ऐसे देखते हैं जैसे कोई ग्रीष्म सूर्य्य-मण्डल की ओर देखे।

५३. पुतु वेत सेनेह से
पसव इवसन मव से
लो रैकुम' दह से
विन्दिति दुक् सरु नोकोट सैप से

अर्थ---पुत्र के प्रति स्नेह होने के कारण जैसे माता प्रसव दुःख को सहन करती है उसी प्रकार जनता की रक्षा करने के विचार से (लिच्छवि राजागण) दुःख का ख्याल न कर उसे सुख समझ कर ही भोगते हैं।

५४. बब्लन तुरु व सा
वला लन मरु विल सा
अनुन् गुण के ले सा
नुगुग नोम पतुरुवति वेसे सा

अर्थ––चमकते हुए तारों को बादलों से ढक देने वाली वायु की तरह (लिच्छवि राजागण) दूसरों के गुणों को मैला कर विशेष रूप से उनके अवगुणों का प्रचार नहीं करते।

५५. अैत्गोवुवन् म रा
तुटुवन गजन् अ यु रा
दुक् गत्तन् म रा
एयिन् तुटु सित् नोवेति इन्दुरा

अर्थ––जैसे कुछ हाथी हथवानों को मार कर संतुष्ट होते हैं, उनकी तरह (लिच्छवि राजागण) अपने लिये दुःख भोगने वालों को मार कर सीधे-सीधे संतोष नहीं प्राप्त करते थे।

५६. सुवन्द हैल् उवु रा
रकिनेव् वरा इन्दु रा
अदहम् रैक पु रा
दहम् नो नसति सितिन् नितो रा

अर्थ––जैसे कोई सुगन्धित शाली धान को उखाड़ कर सीधे-सीधे तिनकों की रक्षा करे, उसकी तरह (लिच्छवि राजागण) अधर्म की रक्षा कर, पूर्ण रूप से, निरन्तर, चित्त से धर्म का नाश नहीं करते थे।

५७. पस् इन्दुरन् रैग त्
अरमुणु पसिन् सैप ल त्
विलसिन् जवन् सि त्
ले वन् लद सैपतिन् म तुटु वे त्

अर्थ—जिस प्रकार पाँच इन्द्रियों के विषयों से उनको जो सुख प्राप्त होता है, आदमी का जवन-चित्त[1] उसी से सन्तुष्ट रहता है, उसी प्रकार (लिच्छवि राजागण) प्रजा को प्राप्त होने वाले सुख से ही सन्तुष्ट रहते थे।

५८. वतुरु वैलि बिम् पे त
नो हैरम करण मेन् ते त
दुक् पत् सतुन् वे त
केरेति निति महकुलुणु मेत् सित

अर्थ—जिस प्रकार पानी बालू पड़ी हुई भूमि को भी गीला करता है उसी प्रकार (लिच्छवि राजागण) दुखी प्राणियों के प्रति निरन्तर मैत्री-पूर्ण चित्त रखते थे।

५९. कळ पिरुणु तेल् अै ति
रकिनेव् निसल कोट नि ति
महतुन् गुण नैणै ति
नितोर रैक बैति सितिन् पवति ति

अर्थ—जिस प्रकार तेल से भरे हुए घड़े को बिना हिलाये-डुलाये निरन्तर संभाल कर रखा जाता है उसी प्रकार (लिच्छवि राजागण) गुणी और ज्ञानी सज्जनों के प्रति निरन्तर प्रेम का भाव रखते थे।

---

१. इन्द्रियों द्वारा गृहीत विषयों का रस अनुभव करने वाला चित्त।

६०. हमन पवनक् से
गवरवळ पुल् सर से
कुल नुकुलन् दे से
सम व पवतिति सितिन् सोन्द से

अर्थ––जैसे पवन अपवित्र-गढ़े और सुपुष्पित सरोवर को समान रूप से स्पर्श करता हुआ प्रवाहित होता है, उसी प्रकार (लिच्छवि राजागण) का मनोभाव कुलीनों-अकुलीनों के प्रति समान रूप से शुभ था।

६१. हिरू नैगेतुद् के से
रकिनन्दुरु गिरि लेण से
सैड दनैतत् के से
दुगी सत रैक सिटिति सित से

अर्थ––सूर्य्य के उदय होने पर भी अंधकार के आश्रय-स्थान पर्वत-कन्दराओं और गुफाओं के समान चण्ड पुरुषों के रहते हुए भी (लिच्छवि राजागण) दुखी जनों की देख-भाल करते थे।

६२. दत् सैदला दम न
दैहैटि दण्डु मेन् दिन दिन
मेहे गेण दनन् गे न
पसुव नोदमति नोदन् नन् मे न

अर्थ––जैसे लोग नित्यप्रति दांतों को साफ करके दातुन को फेंक देते हैं, उस तरह से अज्ञानी मनुष्यों की भांति (लिच्छवि राजागण) लोगों से काम कराकर उनकी उपेक्षा नहीं करते थे।

६३. वेन वेन करल दु टु
वी गेण पुरण मेन् अ टु
सैम सत सित सतु टु
तमालेहि ला नोबू अकप टु

अर्थ—जैसे पृथक् पृथक् दिखाई देनेवाली धान की बालियों से धान लेकर एक जगह इकट्ठा करने से कोठा भर जाता है वैसे ही (लिच्छवि राजाओं ने) सभी जनों के चित्त के संतोष को अपने हृदय में स्थान देकर बहुल रूप से संग्रह कर लिया।

६४. कुस गिनि वितर मि स
नोकरण लेसिन् बत् कि स
नोकरवति दन रै स
सतन् रकिना वितरकट मि स

अर्थ—जैसे भूख की मात्रा के अनुसार भोजन-कृत्य किया जाता है, उसी प्रकार (लिच्छवि राजागण) प्राणियों की रक्षा करने के उद्देश्य को छोड़कर अन्य किसी हेतु से धन का संग्रह नहीं करते थे।

६५. पियुमेहि मी विले हि
तबा बोन हस मेन् ए हि
दन दनवतुन् गे हि
तबा वैड विन्द गणिति निति एहि

अर्थ—जिस प्रकार सरोवर में उत्पन्न होने वाले कँवल के मधु को हँस उस कँवल में ही रखकर पान करता है, उसी प्रकार (लिच्छवि राजागण) धनियों का धन उनके घर में ही रहने देकर उससे निरन्तर अपना काम चला लेते थे।

६६. अैतु रकिना पिणि स
दालन अनुन् सस् ले स
एककुट वैड पिणि स
नोदेति उडुरा एककुगे य स

अर्थ---जैसे हाथियों को पालने के लिये दूसरों के शस्य उजाड़ दिये जाते हैं, उस तरह से (लिच्छवि राजागण) एक को उपकार करने के लिये किसी दूसरे के ऐश्वर्य्य को हानि नहीं पहुँचाते थे।

६७. मे वैनि दस्कम् को ट
लबमी यमक् आह ट
नोम दी ए ओहु ट
नो या देति दोम्नसिन् ओहु गे ट

अर्थ---जो कोई यह सोचकर आता कि इस प्रकार की दक्षता दिखाकर कुछ प्राप्त करूँगा उसे (लिच्छवि राजागण) बिना कुछ दिये असंतुष्ट चित्त से घर नहीं जाने देते थे।

६८. मल सिदेन पमण ट
दवन रन् से गिनि को ट
कळ वरद पमण ट
देवति संताप ओहु दन ह ट

अर्थ---जिस प्रकार स्वर्ण को भट्टी में उतना ही तपाया जाता है जितना तपाने से उसका मैल दूर हो जाय, उसी प्रकार (लिच्छवि राजागण) अपराधी के अपराध के अनुपात से ही अपराधी-जन को दण्ड देते थे।

६९. सिन्दु वडदिय नोव न
कलपुव सिन्देन दिय मे न
सैपेन् दुरुवुव द न
तुमु नोयिन्दिति सितिन् सैप गे न

अर्थ--जैसे समुद्र का जल यदि नहीं बढ़े तो कलपुव[1] में भी जल की कमी हो जाती है, उसी प्रकार यदि जनता सुख से वंचित रहे तो (लिच्छवि राजागण) भी चित्त से दुखी रहते थे।

७०. दुन्नेहि दैडि क मेन्
विदि सैरय दुर य न मेन्
तम कळ दैडि क मेन्
सतुन् दुर नो यैवूय निय मेन्

अर्थ--जैसे धनुष की मजबूती के हिसाब से फेंका हुआ तीर बहुत दूर जाता है, वैसे ही (लिच्छवि राजागण) अपने कर्म की कठोरता से प्राणियों को दूर नहीं फेंकते थे।

७१. मुल तिरव सिटि से
सलल वन तुरु सिर से
सत सुव विन्दिन से
तुमू निसलव सिटिति सित से

अर्थ--जैसे वृक्ष के मूल के स्थिर रहते हुए वृक्ष की फुनगियाँ हिलती हैं, उसी प्रकार लिच्छवि राजागण के स्थिरचित्त रहते हुए प्रजागण (=प्राणी) सुख का अनुभव करते थे।

---

१. समुद्र के जल का तटवर्ती जलाशय।

७२. नुवर रैंक वरण ट
करण पवुरेव् तिर को ट
लोवट रैंक वरण ट
तुम् तिर कोट गणित् हैम वि ट

अर्थ--जैसे नगर की रक्षा के लिये दृढ़ प्राकार रहती है, उसी प्रकार लिच्छवि राजागण लोगों के संरक्षण के लिये अपने आप को सदैव तैयार मानते थे।

७३. बोन मेन् मुवेन् गे न
अैतु सोण्डिनुका गत् पै न
लो वैस्सन् पोव न
तमा लत् सैपतमा निति ये न

अर्थ--जैसे हाथी सूण्ड से खींचे हुए पानी को मुंह से पीता है उसी प्रकार लिच्छवि राजागणों को जो सुख रूपी अमृत प्राप्त होता वह अपनी प्रजा (=लोकवासियों) को ही निरन्तर उसे पान करा देते थे।

७४. मल् नोगेण पल दे न
दिम्बुल् तुरु से हैम तै न
किसि करुणक् नो गे न
दनन् सुवपत् केरेति नितिये न

अर्थ--जैसे गूलर वृक्ष बिना फूल लाये निरन्तर फल ही फल देता है, उसी तरह से लिच्छवि राजागण अकारण ही जनता को सुख ही सुख पहुंचाते थे।

७५. संगिनि ! तोप पुहु दुन्
नुदुटु वेन् सग सुरि न्दुन्
बलवयि तेल र दुन्
बुदुन् वदहळ बैविन् सेत दुन्

अर्थ—भिक्षुओ ! आप पृथकजनों ने स्वर्ग के देवता नहीं देखे हैं। इसलिये इन लिच्छवि राजाओं को देख लो—शान्तिदायक बुद्ध के ये वचन होने के कारण (आगे से सम्बन्धित)

७६. सैबविन् तिदस पु र
सुरसेन् लेसिन् मन ह र
तुटुकळ लोव नो है र
केसे वणमुद ? ओवुन् सिरिस र

अर्थ—जिनका स्वभाव स्वर्ग के देवताओं के समान मनोहर था और जिन्होंने लोक को बिना छोड़े ही जनता को संतुष्ट किया था, उन लिच्छवि राजाओं की श्रीसम्पत्ति का वर्णन हम कैसे करें ?

वैशाली विपत्ति-ग्रस्त

७७. सुरसिरि मेन् नोम न्द
रजसिरि येहेन् विन्द वि न्द
ओवुनोवुन् पेम् बै न्द
मेसे ए रजुन् रज करण स न्द

अर्थ—देवताओं की श्री के समान राज्यश्री को अनल्परूप से भोगते हुए वे लिच्छवि राजागण जिस समय परस्पर प्रेमपूर्वक रहते थे (आगे से सम्बन्धित)

७८. देवियन् गतेहि दि लि
दिसि मेन् जरा विलि पि लि
एनुवर पवा क लि
कलेक दुब्बिक् दुकेक् विय क लि

अर्थ—जैसे देवताओं के प्रकाशमान शरीर में भी बुढ़ापे की झुर्रियां पड़ जाती हैं[1] उसी प्रकार एक समय वह वैशाली नगर भी दुर्भिक्ष रूपी दुःख के वशीभूत हो गया।

७९. नैत नित्‌ल व न् ने
सव् सैप लोव सतु न् ने
पानेव् मे तै न् ने
रोग बियकुत् अवुत् व न् ने

अर्थ—लोक में प्राणियों का सुख सतत् रूप से स्थायी नहीं रहता, मानो इसी बात को प्रकट करने के लिये वैशाली नगर में रोग-भय भी उत्पन्न हो गया।

८०. इसुरेन् तम नुव र
सरि यथि सितिन् बैन्द वे र
दुन्नेव् कुवेर व र
वन्नु यक्सेन् अवुत् ए नुव र

अर्थ—ऐश्वर्य्य में अपने नगर (आलकमन्द) से होड़ करने वाली वैशाली के प्रति वैर-भाव उत्पन्न हो जाने के कारण ही मानो कुबेर ने आज्ञा देकर अपनी यक्ष-सेना को इस नगर में भेज दिया था अर्थात् रोग-भय के साथ अमनुष्य-भय भी उत्पन्न हो गया था।

---

१. देवताओं को तो 'निर्जरा' इसीलिये कहा गया है कि वे जरा प्राप्त नहीं होते।

८१. नुवरेहि विसा ला
यम् किसिवकु तबा ला
यमुदैयि सिता ला
मरुगे सेन् वन् वैनि विसा ला

अर्थ—ऐसा प्रतीत होता था कि यमराज की विशाल सेना उस वैशाली महानगरी में यह सोच कर प्रविष्ट हुई है कि हम इस नगरी में किसी को जीवित छोड़कर न जायेंगे।

८२. गज तुरङ्ग सेन् ह ण्ड
रिय सक् पसङ्ग तुरु ह ण्ड
मे हैम वेसेसिन् मै ण्ड
वैजम्बि बलु कैनहिलुन् गे ह ण्ड

अर्थ—हाथी-घोड़ों की सेना का नाद, रथ के पहियों का नाद, पंचांगिक तुर्य्य-वाद्यों का नाद—इन सभी नादों को विशेष रूप से दबाकर वैशाली महानगरी में कुत्तों और गीदड़ों का नाद व्याप्त हो गया था।

८३. दिय अगल गैम्बु रू
वसा पवुरिस् अतु रू
मळ मिनियेन् पि रू
वटा कळ वैनि अमुतु पवु रू

अर्थ—गहरी खाई के गिर्द जो चारदीवारी थी उसमें इतने मुर्दे भर गये थे कि प्रतीत होता था मानो एक और दूसरी चारदीवारी खड़ी ो गई हो।

८४. दम्बदिब तल अव ट
उवदुरु ताक् एक् को ट
नो हैर गेण ए पुर ट
अवुत् मरु बट वैन्न एक वि ट

अर्थ--ऐसा प्रतीत होता था कि समस्त जम्बुद्वीप में जितने उपद्रव हैं उन सभी का संग्रह करके यमराज उन्हें लेकर एक बार ही विशाला नगरी में आ विराजमान हुआ है।

८५. गोड गोड अॅट सैकि लि
तैन तैन तुबू बलि बि लि
मग मग रेदि वैर लि
एपुर हैसतैन बलत् पिळिकु लि

अर्थ--हड्डियों के ढेर के ढेर लगे थे, जगह-जगह (अमनुष्यों को दी जाने वाली) बलि-पूजा पड़ी थी, रास्तों-रास्तों पर चीथड़े बिखरे पड़े थे--इस विशाला नगर को देखने से सर्वत्र घृणा ही घृणा पैदा होती थी।

८६. दोर दोर मिनी बे र
गेयि गेयि हण्डय बियक र
पिळ पिळ अन्दिन म र
दुगी गिलनुन्गेन् नैतवस र

अर्थ--दरवाजे-दरवाजे मृत-भेरी बजती थी, घर-घर भयंकर नाद होता था, हर एक बरामदे में पड़े दुःखी रोगी दम तोड़ रहे थे।

८७.　　मुत वरल　　　　इस इस
हेन कन्दुलै लिय　　　　अँस अँस
सा गिनिय　　　　कुस कुस
कियन दुकुलव्　म विय बस बस

अर्थ--हर सिर के बाल उड़ गये थे, हर आँख से आँसू बहते थे, हर पेट में भूख की ज्वाला थी और हर वचन दुःखालाप मात्र था।

८८.　　कड कवल　　　　अत अत
इपिळी नहर द　　　　गत गत
बैगै हण्ड　　　　वत वत
वैडुनु दळ सो गिनिय　सित सित

अर्थ--हर हाथ में मुर्दों की खोपड़ी थी, हर शरीर की नसें उभरी हुई थीं, हर मुंह में दयनीय शब्द था और हर हृदय शोक से भरा हुआ था।

८९.　　विय तुणकिन् हदु　　　　रु
बला सपैमिणि उवदु　　　　रु
अँन्दुरन् गेण गैम्बु　　　　रु
अँतुलु नुवरट वन्नु एनुव　　रु

अर्थ--उन रौद्र तीनों-भयों से उत्पन्न उपद्रव की ओर देख गम्भीर आचार्यों सहित उस नगर के सभी नागरिक अन्तर-नगर में प्रविष्ट कर गये।

९०. उनुन् वेत पिय ब स
योदभिन् सितिन् सहतो स
उन् रज मैति पिरि स
नैमद अैति ततु किवुय मेले स

अर्थ—परस्पर प्रिय वचनों का व्यवहार करने वाले प्रसन्न चित्त मन्त्रियों की उस परिषद को नमस्कार कर नागरिकों ने नगर की यथार्थ अवस्था का इस प्रकार वर्णन किया :—

९१. दैडि दुब्बिक् दुके कि
किसि वेदकमक् नो कळै कि
सैण्ड रोदुक् बिये कि
यकुन्गेन् वन महत् वनसे कि

अर्थ—जिसकी चिकित्सा ही नहीं है, ऐसा भयानक दुर्भिक्ष-रोग-रूपी दुःख था, प्रचण्ड रोग भी व्याप्त थे और यक्षों के कारण भी वैशाली नगर महान् विनाश को प्राप्त हो रहा था।

९२. केत् वत् विपत वो
गं हो दिय गिय तै वो
वैसि नैति वियत वो
नोयेक् तुरु लिय दा पतित वी

अर्थ—जितनी खेतों की उपज थी, वह नष्ट हो गई, छोटी-बड़ी नदियों का पानी सूख गया। आकाश में वर्षा नष्ट हो गई। बहुत से पेड़ तथा लतायें सूख कर गिर गईं

९३. तोलु गाना तण क्
दिय तलु तेमन पमण क्
नैतिव तुरु सेवन क्
दुकेकि सिवुपावुन्ट दियुण क्

अर्थ—होंठ हिलाकर खाने भर का भी घास न रहने से, तालु भीगने तक के लिये भी पानी न रहने से और पेड़ों की छाया न रहने से चौपायों को दुगना दुःख हुआ।

९४. पेर सुरंङ्गनन् वै नि
अंङ्गनो सोन्दुरु रुसिरे नि
मस् ले नैति बैवि नि
उदक् गेयि गेयि यकिन्नन् वै नि

अर्थ—जो पहले दिव्याङ्गनाओं के समान थीं, जिनकी रूप-शोभा सुन्दर थी, ऐसी स्त्रियाँ अब (तन पर) मांस और रक्त न रहने के कारण घर-घर की यक्षिणियाँ मात्र रह गईं।

९५. नोयेक् उक् मी र स
गिय वैनि बियेन् पर दे स
सुलब पस् गोर स
दुलब विय मेहि अैतयि यन ब स

अर्थ—बहुल-प्राप्त गन्नों का रस तथा मधु मानों भय के मारे किसी अन्य देश को चला गया हो। जो पांच गोरस पहले इतने सुलभ थे, उनके बारे में यह वचन भी कि यहाँ पांच गोरस हैं सुनना मिलना दुर्लभ हो गया है।

९६. पेर सत सित लेसि नि
सेवुना मना सुवन्दि नि
कपुरु कस्तुरु दै नि
मे पुर नपुरुयि दमा गिय वै नि

अर्थ—जिन कपूर तथा कस्तूरी की सुगन्धियों का पहले लोग यथेष्ट यथारुचि उपयोग करते थे, मानो वे सुगन्धियाँ 'यह नगर ही खराब है' कह वैशाली नगर को छोड़ कर चली गईं।

९७. नैतुवत् सिल् अट ङ्ग
सुवन्द गैमेक् नैत अै ङ्ग
दुरलू लिय सस ङ्ग
पिहिटि अय से म बम्ब सरम ङ्ग

अर्थ—अष्टांगशील व्रत[1] न ग्रहण किये रहने पर भी अंग में सुगन्धियों का लेप नहीं था और ब्रह्मचर्य्य-मार्ग पर प्रतिष्ठित हुए लोगों के समान ही (वैशाली-नगर में) स्त्री-संसर्ग नहीं था।

९८. दुसिरी मग नैव ति
सिलवत् दनन् से नि ति
किविनलु रस नैव ति
नटन नटवन अयेक् नम् नै ति

अर्थ—जो दुश्शीलता का पथ त्याग शील के मार्ग पर आरूढ़ हुए हैं ऐसे जनों के समान वैशाली नगर में काव्यरस तथा नाट्य-रस अवरुद्ध होकर कोई एक भी जन ऐसा नहीं था जो नाचता हो या नचवाता हो।

---

१. प्राणातिपात से विरत रहना आदि आठ शील जिनमें माला-गन्ध विलेपन आदि सुगन्धित पदार्थों से विरत रहने का शील भी शामिल है।

९९. दैनेन् एकङ्ग सि त
वू मेन् केळि सिना नै त
नो सिङ्गन केनेक् नै त
पिहिटि अय मेन् दुहङ्ग पिळिवे त

अर्थ—ध्यान में एकाग्रचित्त हुओं की भांति कहीं कोई हँसी-खेल की बात नहीं थी। धुताङ्ग-व्रतधारियों की भांति हर कोई भिक्षाटन कर रहा था।

१००. अयकु रट वै स्सो
वटलुय दैसि दै स्सो
ऊय पेर नि स्सो
दैनुत् वटला दुवति मै स्सो

अर्थ—पहले जिन श्रेष्ठ नागरिकों (=राष्ट्रवासियों) को दासी-दास घेरे रहते थे, अब भी उनके चारों तरफ मक्खियाँ मण्डराती रहती हैं।

१०१. दिय से सिवु सयु रे
मह सेनङ्ग ऐति नितो रे
सपैमिणि उवदु रे
ओवुन् गैण गत हैकिय ए पु रे

अर्थ—जिस वैशाली नगरी में पहले, चारों समुद्रों के जल के समान अनगिनत सेना निरन्तर बनी रहती थी, उसी (वैशाली नगरी) के उपद्रव-ग्रस्त होने पर सैन्यबल इतना घट गया है कि (आसानी से) गिना जा सके।

१०२. वँड केरेमैयि लोव ट
सपैमिण मे रज सँप त ट
किसिकम् नैति लोव ट
किमेक पिहिटक् नो खेनु मे दुक ट

अर्थ—तब वैशाली की जनता वैशाली-नरेश से पूछने लगी—लोगों का उपकार करने के ही उद्देश्य से इस राज्य-सुख को प्राप्त किया। तब आपके द्वारा किसी भी प्रकार के प्रति-कर्म रहित इस लोक के दुःख को दूर करने का प्रयास न किये जाने का कारण क्या है?

नागरिकों की प्रार्थना

१०३. दुब्बिक् दुक् मु सू
तम सित दुकट सुदु सू
नुवरुन् बस् अँ सू
नीरिन्दु मेलेसिन् तेपुल् पैव सू

अर्थ—दुर्भिक्ष दुःख से प्रभावित (=मिश्रित) होने के कारण दुःखी चित्त नागरिकों ने उक्त प्रकार से राजा से वचन कहे।

१०४. रजुन् अदमिटुव त्
वेति मैतिन्दो द ए पव त्
दैक उन्गे पव त्
बमुणु गहपतियो द ए गणि त्

अर्थ—जब राजा अधार्मिक हो जाते हैं, तब उनके मन्त्री-गण भी वैसे ही हो जाते हैं। और उन मन्त्रियों की प्रवृत्ति देखकर ब्राह्मण तथा गृहपति (=वैश्य) भी वही पथ ग्रहण कर लेते हैं।

१०५. उन् दॆक दनव् वँ सि
दन वॆति अदहमट रि सि
रैक उन् वॆत पैहै सि
सुरन् सितटत् ए दम् अदह सि

अर्थ---उन (ब्राह्मणों और गृहपतियों) की ओर देख जनपदवासी जनता भी अधार्मिक रुचि वाली हो जाती है। उसके साथ उसके आरक्षक देवी-देवता भी वैसी ही अधार्मिक प्रवृत्ति वाले हो जाते हैं।

१०६. ए दैक तुरु दे वियो
वॆति अदहम म से वियो
एयिनहस दे वियो
केरेति सित अदहामिन् नो वियो

अर्थ---यह सब देखते हैं तो वृक्षों पर रहने वाले देवता भी अधर्म-सेवी हो जाते हैं। इसलिये आकाश-स्थित देवता भी अपने चित्त को अधर्म से पृथक् नहीं करते।

१०७. मेलेसिन् अदहम ट
निरिन्दुन् लोव पैमिणि वि ट
ए रदुन् नतु रट ट
हमयि विसम व पवन् दैडि को ट

अर्थ---इस तरह से जब संसार में राजागण अधर्म-मार्गी हो जाते हैं, तो उन राजाओं द्वारा शासित राष्ट्र में विषम-वायु प्रचण्ड वेग से बहने लगती है।

१०८. ए पवन् वैद सैले त
नुब देव् विमन् गमनो त
किपुनेन् सुरन् सि त
नो वस्वति वैसि लोवट कर से त

अर्थ—जब वह विषम वायु आकाशचारी देवताओं के विमानों से जाकर टकराती है, तो वह अस्थिर हो जाते हैं। इससे देवता-गण क्रोधित हो जाते हैं और वह संसार के लिये शान्तिकर वर्षा नहीं होने देते हैं।

१०९. रिवि सन्दहु द तो से
यन मग नोयति पेर से
ए सुरन् वत ए से
नैतिव वैसि सस् कलट नो पै से

अर्थ—जिस मार्ग से रवि तथा चन्द्रमा पहले संतोष-पूर्वक जाते थे, अब वे उस मार्ग से नहीं जाते। इन देवताओं के ऐसा हो जाने पर और वर्षा के न होने पर खेती भी नहीं पकती।

११०. एक गमकट वै सी
वसितत् सम व नो व सी
इन् विसम व पै सी
तुबू सस् वग इता नो रि सी

अर्थ—यदि किसी एक गाँव में वर्षा होती भी है तो समान रूप से नहीं होती। इस कारण जो विषम धान्य-वर्ग पैदा होता है वह अत्यन्त असुन्दर होता है।

१११. ए अहर कन बो न
दनहट एयिन् वेन वे न
रो दुक् वन बैवि न
लोवट वैड अवैड निरिन्दुन् गे न

अर्थ——(उस धान्य से तैयार किया हुआ) वह आहार खाने-पीने पर लोगों को नाना तरह के रोगों का कष्ट होने लगा। इसलिये यह मानना पड़ता है कि राजाओं से ही जगत का उपकार तथा अपकार दोनों होते हैं।

११२. ए बैविन् अप लोव ट
पेर रज सिरित् वेन् को ट
कळ की देय तोप ट
दैनेयि कियवयि किवुय सिहि को ट

अर्थ——इसलिये जनता के कल्याण के निमित्त पहले राजाओं ने अपनी परम्परा के अनुसार जो कुछ कहा, किया होगा——उससे आप जन परिचित होंगे। अब विचार कर वह हमें कहें।

११३. नुवरो एबस सा
निरिन्दुन् नुगुण विम सा
नैतियेन् किसि दो सा
मेसे पवसति ओवुन् यस सा

अर्थ——नागरिकों ने ये वचन सुन राजागणों के दोषों पर विचार किया। जब उन्हें राजा-गणों का कोई दोष नहीं दिखाई दिया तो उन्होंने राजागणों का यश इस प्रकार प्रकाशित किया।

११४. सव् सतरेहि पुरु ढु
महसत् गुणेन् परसि ढु
मह पिन् ऐति मे ब न्दु
उपन् निसि कैत् कुलेहि पिरिसि ढु

अर्थ—सभी शास्त्रों में निष्णात्, महासत्वों के गुणों से युक्त होने से प्रसिद्ध, महापुण्यवान्, इस प्रकार के परिशुद्ध योग्य क्षत्रिय कुल में उत्पन्न (आगे से सम्बन्धित)।

११५. दैन कळ गण वेसे स
नुवणैति दनन् की ले स
पवतिन हैम दव स
दुरिन् दुरुकोट वसन बोरुब स

अर्थ—कृत गुण-विशेष के जानकार अर्थात् कृतज्ञ, ज्ञानी जनों के कथनानुसार ही सदैव आचरण करने वाले तथा झूठे-वचन को दूर से ही नमस्कार कर रहने वाले (आगे से सम्बन्धित)।

११६. मेर मा वैड कैम ति
की करु अैमेत्तन् अै ति
नो हैर म रद नी ति
कैमति देय सिदु करण दनुमै ति

अर्थ—जो दूसरों का हित चाहने वाले हैं, जिनके पास आज्ञाकारी मन्त्री हैं, जो राजनीति से वैराग्य नहीं लिये हैं तथा जिनके पास अपनी हर इच्छा की पूर्ति करने का ज्ञान है (आगे से सम्बन्धित)।

११७. नैगेन रिवि विल सिन्
दिन दिन उदय सिर सिन्
पेर निरिदुन् वि सिन्
पैवति लेसट म पैवति वेसे सिन्

अर्थ--जो प्रतिदिन उदय होने वाले सूर्य्य के समान, पूर्व नरेन्द्रों द्वारा आचरित चर्य्या के समान चर्य्या रखते थे (आगे से सम्बन्धित)।

११८. विकुमट निबोरु व ट
देन महदनट दनह ट
दिवि सतरवनु को ट
रकिन शिहिपत् अैतिव हैमविट ट

अर्थ--पराक्रम, सत्य, जनता को दिये जाने वाले महान् दान की वे सावधानी से हमेशा अपने जीवन के ही समान बल्कि उससे भी बढ़कर सावधानी से रक्षा करते थे।

११९. पिरि सुसिरी मगे
सिटि मैतिवरुन स मगे
रकिन निति स मगे
कवर वरदेक् द? ओब है मगे

अर्थ—सुन्दर चरित्रयुक्त मन्त्रियों के साथ हमेशा मेलपूर्वक रहने वाले आप सब लोगों में कौन दोष हो सकता था?

१२०. निरिन्दो ए बस सा
मैतिन् वेत नेत् सल सा
कियव कियु नो ल सा
ए दुक् पहवन करुणु विम सा

अर्थ--राजा-गणों ने (जनता के) ये वचन सुन मन्त्रियों की ओर आँख फेर कर कहा--"इस दुःख को दूर करने के उपायों का विचार कर बिना आलस्य के अर्थात् शीघ्र कहो।"

मन्त्रियों के उत्तर

१२१. नुवटुन् बस् निव ट
दैवटी पिविटु ससर ट
नट गुण गत् गुण ट
ए विट मैतिन्देक् सेबेन् नैगिसि ट

अर्थ--निर्ग्रन्थों के निकृष्ट वचनों को मानकर संसार में प्रविष्ट हुआ एक ऐसा मन्त्री, जिसने उनके अवगुणों को गुण समझ रखा था, उस समय सभा में खड़ा हुआ (आगे से सम्बन्धित)।

१२२. निरिन्दु पद तम्बर ट
नमकर सेमेन् नैगिसि ट
दिलि बदैन्दिलिव सि ट
मेसे दन्वयि तेपुल् सबय ट

अर्थ--उसने राजा-गणों के चरणकमलों में नमस्कार कर, धीरे से खड़े हो, ज्वलित बद्धाञ्जलि युक्त हो सभा में इन वचनों से (अपना मत) निवेदन किया।

१२३. सित केलेसुन् पसि न्द
सैनहुनु निवन् पुर वै द
बुदु केनेकैत मे स न्द
पवर पूरण कसुबु नम्‌ल द

अर्थ––चित्त के सभी मैलों का नाश कर, निर्वाण रूपी नगर में प्रविष्ट हुए एक श्रेष्ठ बुद्ध इस समय हैं, जिनका नाम पूरण काश्यप है।

१२४. कळ सतन् पिरि सिदु
तपो गुणयेन् पिरि सिदु
अैत बुदु केनेक् सिदु
ककुद कसयिन् नमिन् पर सिदु

अर्थ––तपस्या के द्वारा जिन्होंने अपनी (चित्त-) सन्तति को परिशुद्ध कर लिया है, ऐसे भी ककुध कात्यायन नाम के एक सिद्ध प्रसिद्ध बुद्ध हैं।

१२५. दुसिरी सित नैव ति
तपो गुणयेन् लद तु ति
बुदु केनेकैत ते दै ति
अजित केस् कम्बिली नम् अै ति

अर्थ––मलिन चित्त का निरोध कर तपस्या द्वारा जिन्होंने आनन्द की प्राप्ति की है, ऐसे अजित केस कम्बल नाम के एक तेजस्वी बुद्ध हैं।

१२६. तुट्टु कळ सत् सत न
दिलि तव तेदिन् हैम तै न
बुदु केनेकैत सोब न
निगट नतपुत् नमिन् बबल न

अर्थ--प्राणियों के चित्त को सन्तुष्ट करने वाले, तपस्या के तेज से सर्वत्र दीप्त, निगण्ठनाथ पुत्र नाम के एक सुशोभित तेजस्वी बुद्ध हैं।

१२७. सन्द से तरु वैल मै द
बबलन तवुस गण मै द
बुदु केनेकैत मेस न्द
सञ्जय बेल्लट्ठि पुत् नम् ल द

अर्थ--जैसे तारागणों के बीच चन्द्रमा चमकता है उसी प्रकार तपस्वियों के बीच चमकने वाले सञ्जय वैल्लट्ठि पुत्र नाम के एक बुद्ध इस समय हैं।

१२८. लोव नरयिन् कर न
मह पुद लबन नितिये न
बुदु केनेकैत नमि न
पसिन्दु मक्कलि गोसाल य न

अर्थ--निरन्तर दुनिया के लोगों द्वारा की जाने वाली महान् पूजा को स्वीकार करनेवाले मक्खली गोशाल नाम के एक प्रसिद्ध बुद्ध हैं।

१२९. मे कियन बुदुन् वै न्द
कळहोत् महत् निसि पु द
हिमिसन्द मे पुर ब न्द
कीय उवदुरु दुरु वेती से द

अर्थ—"हे स्वामीचन्द्र ! यदि इन सब बुद्धों की ठीक तरह से महान् पूजा की जाय तो इस नगर के उपद्रव तुरन्त दूर हो जायें"—कहा।

१३०. जड निवटुन् लि सा
बुदु पैयि नसक् सल सा
ओहु की एबस सा
किययि मैतिदेक् सेबेहिमेले सा

अर्थ—इन मूर्ख निकृष्ट जनों के लिये बुद्ध शब्द का प्रयोग सुनकर एक (दूसरे) मन्त्री ने उस सभा में ही इस प्रकार कहा।

१३१. पव् पिन् नैतैयि य न
निवटोय मू हैम दे न
लोवट मुन्गेन् व न
सेतैत सिहिलस लैबेयि गिन्ने न

अर्थ—यदि पाप-पुण्य कुछ नहीं है कहने वाले इन सभी लोगों से दुनिया को कुछ भी शान्ति-लाभ हो सकता है तो आग से भी शीतलता प्राप्त हो सकती है।

१३२. पव् पिन् देकम नै त
रकिना तपस् कम् नै त
ओवन् बुदुय यि ये त
मे से अनुवण कमेक् नम् नै त

अर्थ––जो कहते हैं कि पाप-पुण्य दोनों कुछ नहीं हैं, जिनकी तपस्या (तपस्या) नहीं है––ऐसे लोगों को बुद्ध कहने से (बढ़कर) अज्ञान नहीं है।

१३३. मुन्गेन् वेती से त
करण पुद मे लेव् स त
वैलि मलु ला सत त
मडिन वैनि तेल् पता तेलिय त

अर्थ––इस आशा से कि इन (लोगों) से शान्ति-सुख की प्राप्ति होगी यदि दुनिया के लोग इनकी पूजा करते हैं तो यह ऐसा ही है कि जैसे कोई कोल्हू में बालु की बोरी डालकर तेल की आशा से बालु को पेरे।

१३४. बोरुवेन् वडन ब ड
ए बैविन् दुरुर मुन् ज ड
दत् सिवु वे नोक ड
गेणैर बमुणन् करव लोवै ड

अथ––इसलिये इन झूठ से ही पेट पालन करने वाले जड़ मूर्खों का त्याग कर, चारों वेदों के अखण्ड जानकार ब्राह्मणों को मंगवाकर उनसे दुनिया का कल्याण करावें।

१३५. गहकैन् वल न्दवा
गिनि देवियाट पु दवा
याग कळ सो न्दवा
एय सेत दुक् मुलिन् मु दवा

अर्थ—यदि ग्रह-समूह को बलि देकर सन्तुष्ट कर दिया जाय, यदि अग्नि-देवता की पूजा कर दी जाय, यदि अच्छी तरह से यज्ञ करा दिया जाय तो दुःख की जड़ खुदकर सुख-शान्ति आ जाय।

१३६. ऐ मैति की बस ट
मैतिन्देक् किययि मे ले स ट
लेड दुक् पत् अय ट
तवत् उवदुरु देयिद ? पिट पि ट

अर्थ—उस मन्त्री की बातें सुनकर एक दूसरे मन्त्री ने इस प्रकार कहा—जो रोग तथा दुःख से पीड़ित हैं, उनके ऊपर आप और भी उपद्रव लादना चाहते हैं।

१३७. बोरु वे मतुरु बै न्द
वलहन् लेवन् हैम स न्द
बमुणन्गेन् दुल द
वैडक् वूये लोवट की कल द ?

अर्थ—झूठे वेदमन्त्रों की रचना करने वाले, जनता को सदैव पथभ्रष्ट करने वाले, मिथ्या दृष्टि ब्राह्मणों से लोगों का कब कल्याण हुआ है ?

देवता-निन्दा

१३८. गह्यो नम् अम्ब र
देवियो य ऊ सुर पु र
नो गणिति अन् अह र
उदक् अमरस मिसक् मनह र

अर्थ––यदि आकाश के ग्रह सुरपुर के देवतागण हैं तो वे मनोहर अमिश्र अमृत के अतिरिक्त और कोई आहार नहीं ग्रहण करते होंगे।

१३९. एयित् उन् पेर क ळ
कुसलिन् उपन् निकस ळ
अनिक् केनेकुन् क ळ
देय्यक् उदेसा नो वेयि ए पह ळ

अर्थ––यह अमृत उन देवताओं के निर्दोष पूर्व कुशल-कर्मों का ही फल था। यह किन्हीं दूसरों के कर्मों के फलस्वरूप प्रकट नहीं हुआ था।

१४०. सिन्दु दिय लेस निस ग
पमण नो कळैकि सैप स ग
नरलोव सैपतर ङ्ग
रैन्दुनु पिणि बिन्दु वैन्न तण अग

अर्थ––स्वर्ग-सुख उस नैसर्गिक समुद्र के जल के समान है जो नापा नहीं जा सकता। उसकी तुलना में मनुष्य लोक का सुख तिनके के सिरे पर लगी ओस की बून्द के ममान है।

१४१. सिवुसिय गवु अस ल
वू नम् नरो यम् क ल
देवियो तमन् गे ल
दैवटि कुणु से केरेति पिळिकु ल

अर्थ—जिस समय आदमी देव-लोक से चार सौ गव्यूति की दूरी पर भी होता है तब भी देवताओं को ऐसा लगता है कि जैसे उनके गले से कोई लाश बंधी हो और वे उससे घृणा करते हैं।

१४२. ए बन्दु सुरलोव सि ट
देवियो अवुत् मे लोव ट
तमन् दुन् अहर ट
तुटुव सेत कर नो यति रुक सि ट

अर्थ—इस प्रकार के देव-लोक से देवतागण यहां इस संसार में आकर हम लोगों द्वारा प्रदत्त आहार प्राप्त कर, उससे संतुष्ट हो हमारे लिये शान्ति और रक्षा की व्यवस्था नहीं कर जाते।

१४३. नरलोवै देन पुद ट
रिसि वत दोरिन् दोर सि ट
सुर यधि यनु कुम ट
दुगी याचक यन्ट ए निव ट

अर्थ—जो इस मनुष्य-लोक में आकर दर-दर भटककर हम लोगों द्वारा दी गई पूजा बड़ी रुचि से ग्रहण करते हैं ऐसे नीच, दुःखी भिखमंगों को देवता या सुर क्यों कहा जाय?

यज्ञों में दोष

१४४. गैणुमट अन् इसु ह
उपमा योदा विसितु ह
केरेती याग बो ह
केसे दुरुवेत् द? लोव उवदु ह

अर्थ---दूसरों का ऐश्वर्य्य हस्तगत करने के लिये विचित्र-विचित्र उपायों से झूठे यज्ञ किये जाते हैं। इनसे लोगों के उपद्रव कैसे दूर हो सकते हैं?

१४५. नोयेक् देय रैस को ट
कळ पुद गिनि देवियह ट
सेत वेयि यनु लोव ट
पैवति बोरु मायमकि पेर सि ट

अर्थ---बहुत सी वस्तुओं का संग्रह कर उन्हें अग्नि-देवता को अर्पण कर देने से लोगों को सुख-शान्ति का लाभ होगा---यह पूर्व समय से चला आया झूठा मायावी विश्वास है।

१४६. बरणैस पेर कले क
बमुणु महसल् कुलय क
गुण नैण युत् निसै क
उपन् पिन् सरु बमुणु उतुमे क

अर्थ---पूर्व समय में वाराणसी में एक महाशाल कुल में निश्चित गुण-ज्ञान युक्त, एक उत्तम, पुण्यवान् ब्राह्मण उत्पन्न हुआ।

१४७. सव् सतर समुदु र
दैक नैण नैविन् परते र
पसिन्दु व लोव पत र
तमा बिहिवन दिनेहि गुरु व र

अर्थ—सभी शास्त्रों रूपी समुद्र के छोर को ज्ञानरूपी नौका से देखकर, विस्तृत लोक में प्रसिद्ध, अपने जन्म-दिन ही पर (माता-पिता रूपी) गुरुजनों द्वारा (आगे से सम्बन्धित)।

अग्नि-देवता की पूजा

१४८. नो निवा तबा रै क
दुन् गिनि रैगेण वन य क
वैस अवरुदु नो ये क
पुदा गिनि देवियाट दवस क

अर्थ—बिना बुझने दिये, सुरक्षित रखी गई तथा (उन्हीं के द्वारा) दी गई आग को जंगल में ले जाकर, अनेक वर्षों तक वहीं अग्निदेवता की पूजा करते हुए रहा। तब एक दिन (आगे से सम्बन्धित)

१४९. सिङ्गा गिय तैन ल द
गोणकु गेणवुत् गस बै न्द
केरेमी मसिन् पु द
सिता गिनिदेवियाट मह पु द

अर्थ—भिक्षाटन के लिये गये किसी स्थान से प्राप्त एक बैल को लाकर वृक्ष से बांधा और सोचा कि महान् पूजार्ह अग्निदेवता की मांस से पूजा करूँगा।

१५०. लुणु नैति मस् पुद ट
नपुरुयि सिता गमक ट
गिय दी ओहु लुण ट
अवुत् वलवैसि दनन् ए तैन ट

अर्थ——तब उस ब्राह्मण ने सोचा कि बिना नमक के केवल अलूने मांस से अग्निदेवता की पूजा करना ठीक नहीं। इसलिये वह नमक लाने के लिये एक गांव में गया। उसकी अनुपस्थिति में अरण्य-वासी जनों ने वहाँ आकर (आगे से सम्बन्धित)

१५१. ए गोण मरा म स्
पलहा कमिन् नो सर स्
उन् गिय सन्द ए गो स्
बला गोन् नगुट कुर अँट रै स्

अर्थ——उस बैल को मारकर उसका मांस तुरन्त भून कर खा लिया। उनके चले जाने पर उस ब्राह्मण ने वहाँ आकर बैल की पूँछ, खुर तथा हड्डियों के ढेर को वहाँ देखा।

१५२. अप रकिना त बा
तोप सतु गोणा नो त बा
कन तेक् बेत त बा
बला उन् केनेकि तेपि असो बा

अर्थ——तब उसने अग्नि-देवता को सम्बोधन करते हुए कहा—"हमारी रक्षा करने की बात तो एक ओर, तुम तो उस बैल की भी रक्षा नहीं कर सके जो तुम्हारे पास था और जिसे वे बाकी न छोड़ खा गये। तुम देखते रहे। यह तुम्हारे लिये अशोभन था।"

१५३. एयिन् गिनि देवि नै त
पिन् नैत पुदेन् पल नै त
बोरु बस् लोव पैव त
करण पुदयेक नुवण नैति स त

अर्थ—इससे प्रमाणित होता है कि कोई अग्नि-देवता नहीं है। उसकी पूजा करने में कोई पुण्य नहीं है, कोई फल नहीं है। दुनिया में जो झूठा मत व्याप्त है उसी के कारण अज्ञानी जन इस प्रकार की पूजा करते हैं।

१५४. गोन् मस् नोलदि नो
मे पमण कव यि इति नो
किय मिन् वल गि नो
गसा दिय हेव निविय ए गि नो

अर्थ—अब बैल का मांस अप्राप्त होने से, यही जो शेष है खाओ—कहते हुए उसने पूँछ के सिरे से पीट कर तथा पानी छिड़क कर आग को बुझा दिया।

१५५. उपन् बमुणन् कु ल
नुवणैतियवुन् पेर क ल
निसरु कोट हैरि क ल
ए वैनि गिनि पुद कळै यि किम ? पल

अर्थ—जब ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न ज्ञानियों ने अग्नि-देवता की उस पूजा को जिसे वे पहले से करते चले आ रहे थे निस्सार समझकर छोड़ दिया तो ऐसी अग्नि-पूजा करने से क्या फल होगा ?

१५६. गिनि देविया कैम ति
गेयि गेयि तबा कर रु ति
नो निवा रकिन नि ति
मे लोव गैणुद दैनुडु लेडवे ति

अर्थ––अभीष्ट अग्नि-देवता को सुरुचिपूर्वक घर-घर में बिना बुझाये निरन्तर सुरक्षित रखने वाली स्त्रियाँ भी इस संसार में रोगासन्न होती हैं।

१५७. कलकन् बमुणु द न
उदेसा तम लबन द न
गिनि देविया पुद न
पुदेन् पल किम? लोवट सिदु व न

अर्थ––अपने लिये धन प्राप्त करने के उद्देश्य से ही मनहूस ब्राह्मण-जन जिस अग्नि-देवता की पूजा करते हैं, उस अग्नि-देवता की पूजा करने से इस संसार का क्या भला हो सकता है?

१५८. गेण बमुणन् क ता
करवन याग मे स ता
सुवन्दैल् वी प ता
अकुरु व पुरण वैन्न निय ता

अर्थ––ब्राह्मणों की बात का विश्वास कर लोगों का यज्ञ करना-करवाना निश्चित रूप से ऐसा ही है जैसे कोई सुगन्धित शाली की कामना से (खेत में) कंकर-पत्थर रूपी बीज बोये।

शिव-देवता

१५९. तिसुल वी गत् क रिन्
कलु पैहै रैगत् उगु रिन्
सम् सलु गत् ओ रिन्
अडक् उमयङ्गन गत् सिरु रिन्

अर्थ--(कहते हैं) कि शिव के हाथ में त्रिशूल रहता है, कण्ठ में कालकूट विष रहता है, शरीर पर चर्म-खण्ड (बाघम्बर) रहता है और आधा शरीर उमा नारी का शरीर होता है।

१६०. दळ अड सन्द ब न्दिन
गोर सप् हरक् पल दिन
रङ्ग करण दिन दिन
महलु गोन् वाहनेन् अँवि दिन

अर्थ--(शिव की) जटाओं में आधा चन्द्र बंधा रहता है, (गले में) घोर (विषैले) सर्पों का हार पड़ा रहता है, (वे) रोज-रोज नृत्य करते रहते हैं और एक बूढ़े बैल की सवारी करते हैं।

१६१. लत् मह पद विया
सिर सुर गंगिन् दे विया
अनंग रुव दै विया
येहेक पुद करन मह दे विया

अर्थ--(कहते हैं कि) जिसने महादेव का पद प्राप्त किया है, जिसका सिर आकाश-गंगा से धोया जाता है तथा जिसने अनंगरूप देवता को भस्म कर दिया है यदि उस महादेव की पूजा की जाय तो कल्याण हो।

१६२. एम मह देविन्दुन् हो
नो होत् सिव लिंगय हो
वैन्द पिदुवोत् बो हो
एति की लोवट सेत अम हो

अर्थ––कहते हैं कि उस महादेव अथवा उसके लिंग को ही नमस्कार कर यदि उसकी पूजा की जाय तो संसार के लिये शान्तिस्वरूप अमृत की धारा बहने लगती है।

१६३. ए मैतिन्दु बस् अ सा
मैतिदेक् कियथि मे ले सा
अैति दुक् मद नि सा
तवत् दुक् गेण देयिद ! एव सा

अर्थ––उस मन्त्री के वचन सुने तो एक दूसरा मन्त्री बोला––क्या विद्यमान दुःख अपर्याप्त है कि उसे ढकने के लिये और दुःख लादने की बात करते हो ?

१६४. देवियो नम् स गय
पैलम्बेन अथेकि स स गय
उन् रू सन र ङ्गय
वियरु वेस् अैति नोवेति मेर ङ्गय

अर्थ––तरुण देव मण्डली तो छः प्रकार के स्वर्ग को सुशोभित करने वाली होती है। उनका रूप तो मनोज्ञ होता है। वे इस प्रकार की विचित्र भेष-भूषा वाले (जैसी महादेव की) नहीं होते।

१६५. उतुमो लियन् वे त
नोयिन्दिति विळिन् दैक स त
मेहेसुरु उमा क त
तबा रकितियि किययि सिव ग त

अर्थ---उत्तम जन (अन्य) जनों को देखते हैं तो लज्जा से स्त्री के पास भी नहीं बैठते हैं। कहते हैं कि महेश्वर उमा (=पार्वती) नामक कान्ता को अपनी गोद में ही बिठाये रखता है।

१६६. पवतिन मे लोव रैं क
नैति कळ हिरि ओतप् दे क
ओहु वैन्द पुद नोये क
कळैयि वैड सिदु वेद ? कि कलक

अर्थ---जिसने संसार के लोगों की रक्षा करने वाले लज्जा तथा भय नामक दोनों धर्मों को नष्ट कर डाला उस महेश्वर की नाना प्रकार से पूजा-अर्चना करने से कब किसका कल्याण हो सकता है?

१६७. अवि अन् वैन सुम ट
नैत वेयि तमा रैकुम ट
एयिन् तिसुलविह ट
अैतैयि रा दोस् दैनेयि मे लोव ट

अर्थ---आयुध या तो दूसरों का विनाश करने के लिये रखा जाता है, अन्यथा आत्म-रक्षा के लिये रखा जाता है। (महादेव के) त्रिशूली होने से स्पष्ट है कि उसका इस संसार से राग-द्वेष का सम्बन्ध है।

१६८. रा दोस् पव् मि दी
निसी उतुमन् तिबै दी
सिटि केलेसुन् बै न्दी
ओहुट पुद कोट किम द ? पैहै दी

अर्थ--राग-द्वेष रूपी पाप से मुक्त योग्य उत्तम जनों के रहते जो चित्त-मैल (=क्लेश) से युक्त हैं ऐसे महादेव आदि के प्रति प्रसन्न हो उसकी पूजा करने से क्या लाभ ?

१६९. ससरेहि सबवद त्
सिल्वत् दनो नैण व त्
तुम्रू रंग नो केरे त्
अनुन् कळ नैटुमकुत् नो बल त्

अर्थ--जिन्हें संसार के (अनित्य-) स्वभाव का ज्ञान है, ऐसे ज्ञानी सदाचारी जन न अपने नृत्य करते हैं ओर न दूसरों द्वारा किया गया नृत्य देखते हैं।

१७०. नलु वेस् गेण ए से
नटन कल हैम दव से
उन् पिदुवधि के से
वैडेक् सिदु वे द ? लोवट सित से

अर्थ--इस प्रकार नर्तक का वेष बना प्रति दिन नाचने वाले उन महादेव की पूजा करने से जैसे हम सोचते हैं, वैसे संसार की अभिवृद्धि कैसे हो सकती है ?

१७१. दद दन बस् अ सा
करण पुद ओहु उदे सा
दिम्बुलेहि मल् नि सा
दियँद दुक् विन्दिन वँनि नोल सा

अर्थ—अज्ञजनों के वचन सुनकर महादेव की पूजा करने लग जाना ऐसा ही है जैसे गूलर का फूल प्राप्त करने के लिये आलस्य-रहित होकर गूलर के वृक्ष में पानी सींचने का कष्ट उठाना।

१७२. अयकु पिळिकुल् व न
अयकु सित रा वडव न
लिंगु सटहन् रँगे न
कळँयि पुद पल किम्द इन् व न

अर्थ—किसी के चित्त में घृणा पैदा करने वाले और किसी के चित्त में राग की वृद्धि करने वाले लिङ्ग-संस्थान की पूजा से क्या फल निकलने वाला है?

१७३. सित दुसिरित किलु ट
पिन् केत् नोवन मे लोव ट
करण पुद इसुरु ट
गलक वपुरन वँनन् बिजुव ट

अर्थ—दुश्चरित्रता के कारण मलिन चित्तवाले महादेव की पूजा करना—जो कि इस संसार के लिये पुण्य-क्षेत्र नहीं है—पत्थरों में बीज बोने के समान निष्फल है।

विष्णु-देवता

१७४. गत् यगदा अत ट
पत् दिव गुरुलु यह् न ट
वैद समुदुर दिय ट
सैतपि नतना दरण वैल पि ट

अर्थ---वह (विष्णु) हाथ में लोहे की गदा लिये रहता है, दिव्य गरुड़ वाहन पर आरूढ़ होता है, समुद्र में प्रवेश कर अनन्त नागराज के फन वाले मस्तक के बीच शयन करता है।

१७५. ते दियत उ विन्दु मय
नैत वेन केनेक् ए स मय
पुदयट निसि ए मय
कीय पुदकरण लेस महि मय

अर्थ---तीन लोक में वह उपेन्द्र (विष्णु) ही है। उसके समान दूसरा कोई नहीं है। उसी की पूजा करनी योग्य है---इस प्रकार उसकी पूजा के निमित्त उसकी महिमा कहते हैं।

१७६. उविन्दुन् गुण वेसे स
पळकर कियत मे ले स
सिट निरिन्दु अबिय स
किययि मैतिन्देक् सेबंहि मे ब स

अर्थ---जब इस प्रकार उपेन्द्र (विष्णु) के गुण विशेष प्रकाशित किये जा रहे थे, तो राजा के पास ही स्थित एक मंत्री ने सभा में ये वचन कहे।

१७७. अैतिहट पैन् पव स
लुणु दिय गेण पोवन ले स
विन्दिना मे वे हे स
मंदव तव सलसथि द ? दुक् रै स

अर्थ—जिस प्रकार किसी को पानी की प्यास लगी हो और कोई उसे नमक का पानी पिलाये ठीक उस आदमी की तरह आप जो यह दुःख के ढेर की व्यवस्था कर रहे हैं, तो क्या जो कष्ट हम भोग रहे हैं, वह कम है ?

१७८. नोबा लोव नि न्दा
तकिवत् अन्द म न्दा
पुद कर उवि न्दा
अैद्द ? अैसुवा वैडक् वि न्दा

अर्थ—लोगों की निन्दा की परवाह न कर भले ही तुम अन्ध-मूर्ख की तरह कुछ भी कहते हो तो भी क्या तुमने सुना है कि विष्णु की पूजा करने से किसी का भी भला हुआ हो।

१७९. हैम तैन अविन्दु अै त
सीताव वेन् वनु नै त
ए निसा युदत् अै त
कुमट पैवसी द मे बोरु म त

अर्थ—यदि यह कथन सत्य है कि विष्णु सर्वत्र व्याप्त है तो सीता भी राम (विष्णु) से पृथक् नहीं हुई होगी। तब (राम-रावण का) युद्ध हुआ है—ऐसा झूठा मत किस लिये प्रकाशित किया जाता है ?

१८०. वन्दुरकु पिनु मुहु द
एतर व या नो ही हि न्द
गियेल रस् गे बै न्द
मे से वे द मे लोव देवियन् ते द

अर्थ---कहते हैं कि जिस समुद्र को बन्दर तैर कर पार कर गये उसके इस पार न आकर रामचन्द्र उसी पार बैठे रहे और सेतु बान्ध कर ही इस पार आये---तो क्या इस दुनिया में भगवान् की तेजस्विता ऐसी ही है?

१८१. अस म बस स त् ते
नोदनी मे तो त त् ते
ओहुट बिय ऐ त् ते
एयिन यगदायुदय ग त् ते

अर्थ---मेरे सत्य वचन को सुनो। तुम इस तत्व की बात को नहीं जानते। विष्णु को (किसी का) भय (अवश्य) होगा। इसीलिये उसने हाथ में गदा आयुध धारण किया है।

१८२. सक् बेल्लकु पि म्बिय
रा दोस् सितिन् नो ति बिय
ओहुट ऐति कल बिय
केसे दुरलयि द? नरयन् बिय

अर्थ---जो शङ्ख फूंकने वाले हैं, जिनके चित्त से अभी राग-द्वेष का क्षय नहीं हुआ है, जो अभी स्वयं भय से मुक्त नहीं हैं---ऐसे विष्णु आदमियों को कैसे भय-मुक्त कर सकते हैं?

१८३. लबमी सेत इदि रि
ओहुट करणा पुद सि रि
लबनुव तेल् मिहि रि
तबा अलळन वैन्न ओट्टु कि रि

अर्थ--भविष्य में शान्ति लाभ की आशा से विष्णु की पूजा करना ऐसा ही है जैसे मधुर-तेल (घी) की आशा से ऊँटनी के दूध को बिलोना।

१८४. पेर बुदु बण अ सा
बुदु गुण उगत् सक सा
मैतिन्देक् ए विग सा
ए रद सब मैद मे से पव सा

अर्थ—जिसने पहले बुद्ध का धर्मोपदेश सुना था, जिसने अच्छी तरह बुद्ध-गुणों का ज्ञान प्राप्त किया था ऐसे एक मन्त्री ने उसी क्षण उस राज-सभा के बीच में कहा।

बुद्धगुणानुस्मरण

१८५. अप मुनि तिलो ना
हैर कियन वस् मे द ना
हैर किरि पिरि त ना
वैन्न अङ्ग रैगेण किरि दो ना

अर्थ--त्रिलोक नायक हमारे मुनीन्द्र (बुद्ध) को छोड़कर अन्य किसी के बारे में इन लोगों द्वारा कहे जाने वाले ये शब्द ऐसे ही हैं जैसे कोई दुग्ध-भरा पयोधर छोड़कर सींग में से दूध दुहने की कोशिश करे।

१८६. लैब दिवैस निकस ळ
बैलुवत् सियलु सक्व ळ
मुनिन्दुन् मिस उदु ळ
केनेक् नैतसत् लोवट सेत् क ळ

अर्थ---यदि शुद्ध दिव्य चक्षु से सारे चक्रवालों को भी देखा जाय तो भी प्रकाशमान् मुनीन्द्र (बुद्ध) के सदृश विश्व को शान्ति देने वाला और कोई नहीं दिखाई देगा।

१८७. मेर गिरि सरि गिरे क्
रिवि सन्द सदिसि पहने क्
नैत सिन्दु सरि सरे क्
ए मेन् नैत मुनिन्दु सरि उतुमे क्

अर्थ--मेरु पर्वत के समान पर्वत नहीं, सूर्य-चन्द्र के समान प्रदीप नहीं, समुद्र के समान सरोवर नहीं तथा मुनीन्द्र (बुद्ध) के सदृश कोई दूसरा उत्तम (=जन) नहीं।

१८८. ओहु नो वैडि देस् देस्
ओहु देस नो नैमि इस् इस्
ओहु नुदुटु अैस् अैस्
नोवेयि ओहु गुण नो वैकि बस् बस्

अर्थ--जिस देश में तथागत नहीं गये वह देश देश नहीं; जो सिर उनके चरणों में नहीं झुका वह सिर सिर नहीं; जिन आंखों ने उनके दर्शन नहीं किये वे आंखें आंखें नहीं और जिस वाणी ने उनका गुणानुस्मरण नहीं किया वह वाणी वाणी नहीं।

१८९. सिहि नोकळ सित सित
ओहु गुण नोकी वत वत
ओहु नो वैन्दि अत अत
नोवेयि ए सरण नो गत् सत सत

अर्थ--जिस चित्त ने तथागत की याद न की हो वह चित्त चित्त नहीं; जिस मुंह ने उनका गुणानुवाद न किया हो वह मुंह मुंह नहीं, जिन हाथों ने उनकी वन्दना न की हो वे हाथ हाथ नहीं और जिस प्राणी ने उनकी शरण ग्रहण न की हो वह प्राणी प्राणी नहीं।

१९०. सिहि नो कळ दिन दिन
ओहु बस् नो वन् कण कण
नो दत् गुण पैण पैण
नोवेयि ओहु मुल् नोकळ पिन पिन

अर्थ--जिस दिन तथागत की याद नहीं आई वह दिन दिन नहीं, जिन कानों ने उनके वचन नहीं सुने, वे कान कान नहीं, जिस प्रज्ञा ने उनके गुणों का ज्ञान प्राप्त नहीं किया वह प्रज्ञा प्रज्ञा नहीं, जिस पुण्य (कर्म) में उनकी प्रमुखता नहीं वह पुण्य (कर्म) पुण्य (कर्म) नहीं।

१९१. मुनिन्दुन् नुदु टुवो
वेति बव दुकट ब टुवो
ए मुनि सन्द दु टुवो
ओहुम वेति मोक् सैपत दु टुवो

अर्थ--जिसने तथागत का दर्शन नहीं किया वह भवसागर रूपी दुःख में डूबता है, जिसने उन मुनीन्द्र का दर्शन किया है वही मोक्ष-सम्पत्ति का द्रष्टा होता है।

१९२. मुनि बण नो अँ सुवो
वेति ससर बैस वि सुवो
ओहुगे बस् अँ सुवो
ओहुम वेति ससर दुक् नै सुवो

अर्थ---जिन्होंने बुद्धोपदेश नहीं सुने वे संसार सागर में डूबते हैं, किन्तु जिन्होंने बुद्धोपदेश सुने हैं वे ही संसार-दुःख का मूलोच्छेद करने वाले होते हैं।

१९३. ओहु मय नोद न् नो
मुनि दम् रस नो द न् नो
ओबुन् गुण द न् नो
उमय सग पवग सैप द न् नो

अर्थ---वास्तविक अज्ञानी वे ही हैं जो मुनीन्द्र (बुद्ध) के धर्म के रस से अपरिचित हैं। जो बुद्ध के गुणों से परिचित हैं, वे ही स्वर्ग, अपवर्ग सम्पत्ति के जानकार हैं।

१९४. कुमकिन् कुम न्दो
नो दनिति अन्द म न्दो
मुनि सरण वै न्दो
उमय सैप सिन्दु सैद किमि न्दो

अर्थ---जो अन्धे-मूर्ख हैं वे नहीं जानते कि किस का क्या करना चाहिये ? जिन्होंने मुनीन्द्र के चरणों में वन्दना की है वे ही सुख-सागर में अवतीर्ण होने वाले हैं।

१९५. दिटु किलिटु वन्नो
वेति पसुतैविलि वन्नो
ओहु सरण वन्नो
उभय बव परतेरट वन्नो

अर्थ--जिनकी दृष्टि (-मत) शुद्ध नहीं है वे पश्चाताप करने वाले होंगे। लेकिन जो तथागत की शरण ग्रहण करने वाले हैं भवसागर को तरने वाले होंगे।

१९६. बम्ब सुर निरि न्दो
मुनि पद तम्बर वै न्दो
मुदुनैन्दिलि बै न्दो
उभय अत् बैवेहि पल वि न्दो

अर्थ--जिन ब्रह्म-देवताओं ने जिन श्रेष्ठ जनों ने तथागत के चरणों में वन्दना की है और सिर पर अञ्जलि-बद्ध नमस्कार किया है उन्होंने अपना जन्म सुफल किया है।

१९७. तम बस वन् स वन्
सतपा रुवन् देनु वन्
सैदैहेन् वन् ले वन्
बहयि मह सैपत वन् ए नि वन्

अर्थ--जो लोकवासी तथागत के वचनों को अच्छी तरह सुनते हैं, जो उनके दर्शन करते हैं तथा जो श्रद्धापूर्वक उनके पास जाते हैं, उन्हें तथागत निर्वाण रूपी महान् सुख तक पहुंचा देते हैं।

१९८. बव दुक् गिनि नि वन
सत सग पेलेन् पिण वन
नैत सरि वन दे वन
केनेक् मुनिन्दुट तिलोगुरु वन

अर्थ––संसार-दुःख रूपी अग्नि को शान्त करने वाले, प्राणियों को स्रोतापत्ति मार्ग फल आदि का अवबोध करा कर प्रसन्नता देने वाले त्रिलोक गुरु मुनीन्द्र के समान और कोई दूसरा नहीं है।

१९९. सग मोक् सैप देव ति
अवा बिय दुक् नवत ति
पिरि मेत् कुलुणु अै ति
लोवट उतुमो ओवुन् मुत् नै ति

अर्थ––स्वर्ग-मोक्ष सम्पत्ति दिलाने वाले, अपाय (-नरक) भय रूपी दुःख से बचाने वाले, संसार के प्रति करुणा तथा मैत्री रखने वाले यदि कोई हैं तो केवल तथागत हैं।

२००. उन् उन् तैन् पु दा
उन् वन् देसट नैम दा
येति बवदुक् मु दा
कियन किम? उन् महिम पह दा

अर्थ––जब उनके निवास-स्थान की पूजा करने से, उनके द्वारा प्रविष्ट देश को नमस्कार करने से आदमी संसार रूपी दुःख से मुक्त हो जाता है तो उनकी महिमा को स्पष्ट करके क्या कहा जाय?

२०१. उन् वैलन्दु पय द
उन् पद लसैति पहण द
उन् पिट दुन् रुक द
पुदा मोक् सैप लबति दुक् सि न्द

अर्थ---जिस पात्र का तथागत ने उपयोग किया, जिस पत्थर पर उन्होंने अपना चरण-चिह्न रखा तथा जिस (बोधि) वृक्ष को उन्होंने पीठ का सहारा दिया---इनकी पूजा करने से भी (लोक-वासी) दुःख का क्षय करके मोक्ष-सम्पत्ति प्राप्त करते हैं।

२०२. ए मोक् पुर वन् दैयि
सेत देन्ट पिळिवन् दैयि
नो कियव कुमन् दैयि
तमा पद गिरि तुरुदु वन् दयि

अर्थ---हम ऐसा क्यों न कहें कि वह मोक्ष-दान में समर्थ हैं, शान्ति के प्रदान करने में समर्थ हैं जब कि वे अपने चरणों, (श्रीपाद आदि) पर्वत तथा बोधि-वृक्ष की भी वन्दना करवाने में समर्थ हैं।

२०३. तम रुव दुटु नेत ट
तम गुण सितु सतन ट
दुक् नोवदिन लेस ट
देसिय निसि मग दहम् मे लोव ट

अर्थ---जिन्होंने तथागत के रूप-श्री के दर्शन किये उन नेत्रों में तथा जिन्होंने तथागत के गुणों का स्मरण किया वैसे चित्तों में दुःख का प्रवेश न होने देने के लिये तथागत ने इस संसार के प्राणियों को भली प्रकार (आर्य अष्टांगिक) मार्ग रूपी धर्म का उपदेश दिया।

२०४. मिस दिट्ठ मुलु पु ळे
अटङ्ग मङ्ग बिजु वपु ळे
दहम् गङ्ग दिय ळे
ओवुन् गेनि सेत दियत पत ळे

अर्थ—(क्योंकि) तथागत ने मिथ्या-दृष्टि की जड़ें उखाड़ कर अष्टांगिक मार्ग रूपी बीज का आरोपण किया और क्योंकि उन्होंने धर्म की नदी बहाई, इसलिये उन्हीं से संसार में शान्ति का प्रसार हुआ।

तथागत-बल

२०५. दियै से बिमै गिले त
बीमै से दियेहि ऊैविदि त
अहसत् एम कर त
समत ए मुनि जिसक् वेन नै त

अर्थ—जो पानी की भांति स्थल पर भी तैर सकें, जो भूमि की भांति जल पर भी चल सकें तथा जो आकाश में भी इसी प्रकार चन्क्रमण कर सकें—यह सामर्थ्य तथागत के अतिरिक्त और किसी में नहीं है।

२०६. दिनै दिनै दिलि न्दुमेन्
कर रस नो वन सि न्दुमेन्
नो नैसि विदु कि न्दुमेन्
वैजम्बि अड नो वन पुन् स न्दुमेन्

अर्थ—प्रतिदिन प्रकाशित होनेवाले सूर्य्य के समान, जिसका जल खारा नहीं ऐसे समुद्र के समान, जो नष्ट नहीं हुई ऐसी विद्युत-लता के समान तथा जो क्षीण नहीं हुआ है ऐसे पूर्ण चन्द्र के समान तथागत सुशोभित थे।

२०७. लेडट दिव ओसु से
मरु कतरु पुल् विल से
दुकेहि पिहिटेक से
पिहिटि दोर दोरे हि कप् तुरु से

अर्थ—रोग के लिये दिव्य औषध के समान-बालु के कान्तार में कँवल-युक्त तालाब के समान तथा द्वार-द्वार पर लगे हुए कल्पवृक्ष के समान तथागत हर दुखी के लिये समान रूप से उपकारी थे।

२०८. लंवै सिट मरण ट
वैन्द होत् ए सक् देविन्दु ट
तेकेळ सुवहस् सै ट
आयु दिन एक बसिन् एम वि ट

अर्थ—जो मरणासन्न था उस शक्र देवेन्द्र ने आकर जब वन्दना की तब तथागत ने उसे 'दो शब्द' कहकर ही तत्क्षण तीन करोड़ साठ लाख वर्ष की आयु दे दी।

२०९. तबा तुन् पिय व र
वैडि कलै तिदस पुरव र
मुनि सन्दुगे पव र
केसे पैवसिय है कि द? सिरि सर

अर्थ—जो तीन कदम रखकर त्रिदश-पुर को पधार गये थे उन श्रेष्ठ मुनिचन्द्र की शोभा किस प्रकार प्रकाशित की जा सकती है? नहीं ही की जा सकती।

२१०. दसट रियनक् ग त
रैगेनै अबलुव अैतुळ त
यन सैतपेत इन्दि त
समत ए मुनि मिसक् वेन नै त

अर्थ—अट्ठारह हाथ का शरीर लेकर भी यदि कोई सरसों के अन्दर आ जा सकता है, शयन कर सकता है तथा बैठ सकता है तो यह सामर्थ्य तथागत के अतिरिक्त और किसी में नहीं है।

२११. सवणक् रसिनुदु ळ
तिल बिजु पमण गलिन ळ
अैमतैन एकेलि क ळ
अनत पिरियत् सियलु सक् व ळ

अर्थ—शरीर के तिलमात्र स्थान से निकलने वाली, अनन्त, असीम सभी चक्रवालों को सर्वत्र एकालोक कर देने वाली छः वर्ण की रश्मियों से तथागत देदीप्यमान थे।

२१२. देसत बण एक वि ट
एक मगद बसि ने लि को ट
सिय बस लेस कण ट
अैसेयि मुलुलोवै सियलु सतह ट

अर्थ—तथागत एक मात्र मागधी भाषा में समझाकर जब किसी एक समय धर्मोपदेश करते थे तो सम्पूर्ण संसार के सभी लोगों को ऐसा प्रतीत होता था कि उन उन की अपनी भाषा में ही वे धर्मश्रवण कर रहे हैं।

२१३. ओहु बण देसन वि ट
वन् नद दहम् मण्डल ट
भिस पिरिस वितर ट
नोयेयि एक अङ्गलकुत् बैहैर ट

अर्थ—तथागत के धर्मोपदेश के समय उनकी जो आवाज होती थी वह धर्म-मण्डल से अथवा धर्मोपदेश सुनने वाली परिषद् की सीमा से बाहर एक अंगुल भी नहीं जाती थी।

२१४. वडिमियि सितु वि ट
दोरगुलु अैरेयि एक वि ट
दिगु कळ कल पय ट
पियेयि सत् बुमु पियुम् मुनिन्दु ट

अर्थ—जब तथागत कहीं पधारने का विचार ही करते थे तो दरवाजों की अर्गल अपने आप खुल जाती थी; जहाँ-जहाँ मुनीन्द्र अपने चरण रखते थे वहां-वहां सप्त-भूमक कँवल खिल जाते थे।

२१५. वळ गोड ए विग से
सम वेय बेर अैस से
दिव मल् वैसि वै से
सैदेयि मुनि वडन मग देप से

अर्थ—जिस रास्ते से तथागत पधारते थे उस मार्ग की ऊंची-नीची भूमि भेरी-तल के समान सम हो जाती थी और उस रास्ते के दोनों ओर दिव्य-पुष्पों की वर्षा होती थी।

२१६. मुनि सन्द यत उ से
बुवत् मेर गिरि सिर से
हियु वे बडग से
नैमी पिळिगणिय पद एम से

अर्थ——जब तथागत किसी ऊँचे स्थान पर जाते तो फिर चाहे वह मेरु पर्वत का मस्तक ही क्यों न होता, तो वह स्थान छिलका उतरी हुई बेंत की लता की तरह झुक कर उनके चरणों का स्वागत करता।

संघ-बल

२१७. बम्बलोव गोस इन्दि ति
कप् सिय दहस् नरम्ब ति
रिवि सन्द पिरिमदि ति
मेसे ओहु सङ्घ गण द बैजम्बे ति

अर्थ——(तथागत का संघ-समूह भी) ब्रह्मलोक तक पहुंचकर वहाँ रहता है, लाखों कल्प आगे तक देखता है तथा सूर्य्य-चन्द्र को भी अपने तेज से आभाहीन कर देता है——इस प्रकार उनका संघ-समूह दीप्त होता है।

२१८. सक्वळगिरि सुने र
देरण सोल्वा एक व र
करण मह पेळह र
पवर सङ्घ गणय मुनि पिरिव र

अर्थ——चक्रवाल (पर्वत) तथा सुमेरु पर्वत को धारण करने वाली महापृथ्वी को एकदम हिला डालने की प्रतिहार्य कर सकने वाला मुनीन्द्र का श्रेष्ठ संघ-समूह था।

२१९. मे ससर पेर दव स
नोयेक् कप् केळ सुवह स
कन्द पिळिवेळ वेसे स
दकिन सङ्घ पिरिवरय निसिले स

अर्थ—अनेक करोड़ों-लाखों कल्पों से चली आई, इस संसार की पूर्व-कालीन स्कन्ध-परम्परा को विशेष रूप से अच्छी तरह देखने में मुनीन्द्र का संघ-समूह समर्थ था।

२२०. लक् तबतत् देर णः
पस् मन्दय यत अपम ण
लैबगेन मग नुव ण
ए मुनि वेत सिटिति मह सङ्घ गण

अर्थ—यदि मापें तो जिस संघ-समूह द्वारा प्राप्त मार्ग-ज्ञान को मापने के लिये पृथ्वी भर की मिट्टी भी कम कही जायगी—ऐसा महासंघ समूह तथागत के समीप निवास करता था।

२२१. मुलु लोवै अैम दे से
दकिन सत सित सित से
लैबगेन दिव अै से
सिटिति मह सङ्घहु ओहु देप से

अर्थ—समस्त लोक के चारों ओर के प्राणियों के चित्त को अपने चित्त से जान सकने में समर्थ दिव्य-चक्षु प्राप्त महान् संघ-समूह तथागत के दायें-बायें रहता था।

२२२. सुरबम्ब लोवै सत न
किंयन बस् हैम तैन तै न
दिवकन् लैब अस न
ए मुनि वेत सङ्ग गणय वैजम्बे न

अर्थ--दिव्य ब्रह्मलोक वासी प्राणियों द्वारा सर्वत्र कही जाने वाली वाणी को सुन सकने वाले दिव्य-श्रोत्र-धारी (अर्हत) भिक्षुओं का समूह तथागत के पास निवास करता था।

२२३. केलेसुन् दुरर सि त
विदसुन् मगिन् लैब से त
पिन्केत् वन दिय त
पसिन्दु सङ्ग गणय मुनि सन्दु वे त

अर्थ--विदर्शना-भावना-मार्ग से चित्त के मलों का त्याग कर शान्ति-प्राप्त, सकल संसार के पुण्य-क्षेत्र प्रसिद्ध भिक्षुगण तथागत के समीप रहते थे।

२२४. पहदा तमन् सि त
मुदुनैदिलि बैन्द वैन्दि स त
लन सग मोक् सैप त
ए मुनि वेत मे वैनि सङ्ग गण अै त

अर्थ--ऐसे प्राणियों को, जो अपना चित्त श्रद्धावनत कर, सिर पर हाथ रख अञ्जलि-बद्ध नमस्कार करें, स्वर्ग-मोक्ष सम्पत्ति दिला सकने वाले भिक्षु-गण तथागत के समीप रहते थे।

देवताओं द्वारा पूजा

२२५. मह बम्बहु मुनिन्दु ट
से सत् नङ्गति मुदुन ट
ए मुनिसन्दु पुदय ट
पिम्बिति सक् सक् देविन्दो सि ट

अर्थ—महाब्रह्मा गण मुनीन्द्र तथागत के सिर पर श्वेत-छत्र धारण करते हैं और शक्र देवेन्द्र तथागत की पूजा करने के निमित्त शंख की ध्वनि करते हैं।

२२६. गमनोत मुनि न्दुना
सुरिन्दुसन्द सिरि वि न्दुना
सिहिल् नल वि न्दुना
सलति सुदु सिनिन्दु वल् वि दुना

अर्थ—तथागत के गमन के समय श्रीमान् सुरेन्द्रचन्द्र शीतल वायु उत्पन्न करने वाले श्वेत स्निग्ध पंखे से हवा झलते थे।

२२७. मुनि सन्दु वडिन तैन
दिव मल् दिव पहन् गे न
पुद केरेति वेन वे न
दहस् सुवहस् पमण सुरङ्ग न

अर्थ—जहाँ जहाँ मुनीन्द्र तथागत पधारते थे वहाँ वहाँ हजारों लाखों दिव्याङ्गनायें दिव्य पुष्प तथा दिव्य प्रदीप लेकर पृथक्-पृथक पूजा करती थीं।

२२८. सितु मिणि मेन् लोव ट
सपैमिणि मे अप मुनिन्दु ट
सुरसेन् सिट दे पि ट
सलति पैहैविहिदि मिणि तल् वै ट

अर्थ—विश्व के लिए चिन्ता-मणि के समान हमारे मुनीन्द्र तथागत के दोनों ओर खड़ी होकर सुर-सेना माणिक्य-जड़ित प्रभासम्पन्न पंखे डुलाती थी।

२२९. देवियो दिव म लिन्
असुरसेन् सित् पळो लिन्
दिव नयि कडुपु लिन्
पुदति गिरि तुरुदु पुल् कम लिन्

अर्थ—देवता गण दिव्य-पुष्पों से पूजा करते थे, असुर-सेना (दैत्यगण) श्वेत पाटली-पुष्पों से पूजा करती थी, दिव्य नाग कोण्डोत्पल पुष्प से पूजा करते थे तथा पर्वत और वृक्ष भी उत्पल तथा कँवल से पूजा करते थे।

२३०. सवणक् रैस् दिग त
पैतिरेयि बुदुनगे ग त
बम्बलोवै सिट बल त
अनोलोकितय उन् मुदुन त

अर्थ—तथागत बुद्ध के शरीर से निकलने वाली छः रंग की रश्मियां चारों दिशाओं में व्याप्त थीं। यदि ब्रह्मलोक में खड़े होकर भी देखा जाता तो भी उनका सिर अदृष्ट ही रहता था।

२३१. सैदि मुलु तुन् दिय त
विसितुरु पेनेयि सरण त
रूसिरि सर सुग त
बलत अमरस वैन्न नेत ने त

अर्थ--तीनों लोकों के विचित्र-विचित्र चिह्न तथागत के श्रीचरणों में विद्यमान थे। सुगत की रूप-श्री को जो भी कोई देखता था, उस प्रत्येक देखने वाले की आँखों को अमृत-रस की प्राप्ति का सा अनुभव होता था।

२३२. एलिपत मिटि वै ये यि
उडेलिपत हो उड ये यि
सत सित तुटु वै ये यि
मुनिन्दु नोनैमीमै गेट वैद ये यि

अर्थ--तथागत यदि किसी ऐसे घर में पधारते थे जिसका दरवाजा छोटा हो तो या तो चौखट की नीचे की लकड़ी नीचे चली जाती थी या चौखट की ऊपर की लकड़ी ऊपर उठ जाती थी। तथागत बिना झुके ही प्राणियों के चित्त को प्रसन्न करते हुए घर में प्रवेश करते थे।

तथागत का उपदेश

२३३. नरम्बा एक् दिग त
मुनिन्दुन् दहम् पवस त
सिटि अय दस दिग त
दकित् अप मुनि सन्दुन् बुबन त

अर्थ--जब तथागत किसी भी एक दिशा की ओर मुंह करके धर्मोपदेश देते थे तो दशों दिशाओं में बैठी परिषद को ऐसा लगता था कि हमारे मुनीन्द्र हमारी ही ओर मुँह करके धर्मोपदेश दे रहे हैं।

२३४. सदहम् देसन स न्द
निकुत् कट हण्ड मुनिस न्द
कुरवि वेण नदट द
वडा दहसक् गुणेन् वेयि न द

अर्थ––जिस समय तथागत धर्मोपदेश देते थे, उस समय उनके मुँह से जो स्वर निकलता था वह ? पक्षी के स्वर अथवा वीणा के स्वर से भी अधिक मनोहर था।

२३५. सक्वळ नुब देर ण
पिरुण दियकन्द सतर ण
किय हैकि दैन पम ण
पमण नोकळैकि ए मुनि सन्दुगु ण

अर्थ––चक्रवाट (पर्वत) का प्रमाण बताना सम्भव हो, आकाश का प्रमाण बताना सम्भव हो, पृथ्वी का प्रमाण बताना सम्भव हो, चारों समुद्रों में भरी जल-राशी का प्रमाण बताना सम्भव हो तो भी मुनीन्द्र तथागत के गुणों का प्रमाण बताना संभव नहीं ।

२३६. मे तैनट मे व टी
कियत उतुरक् नो दि टी
ए गणिति वैन्द वै टी
ए मुनिमय मुलु लोवट बुहु टी

अर्थ––यदि तथागत कहते कि इस स्थान के लिये यह बात योग्य है, तो कोई उसका प्रतिक्षेप करने वाला नहीं था। सभी उसको दण्डवत प्रणाम कर के स्वीकार करने वाले थे। इस प्रकार समस्त लोक में तथागत ही सभी से अधिक दक्ष थे।

२३७. से नोसे कस्य ल
अै अैमतन् हि अमैक ल
पवती नुवण ब ल
ए मुनि दसबलय इन् एम्ब ल

अर्थ--स्थानास्थान ज्ञान, कर्मफल ज्ञान आदि ज्ञान सर्वत्र, सब जगह प्रर्वातत होते हैं। इसलिये हे पुण्यपुरुषो! तथागत दशबलधारी हैं।

२३८. किसिवकुट लोव अै ति
दुकक् नोकरणु मिस नि ति
ए मुनिन्द रुव अै ति
अैतुन् केळ दहसकट बल अै ति

अर्थ--दुनिया में किसी को भी कभी दुःख न पहुंचाने वाले उन मुनीन्द्र के स्वरूप में करोड़ हजार हाथियों का बल था।

पूर्व-चरित्र

२३९. दिवकुरु बुदुन क ल
पटन् वन तेक् दस ब ल
मे सतर असेकिक ल
नो केळे एक उपतकुल् निस् प ल

अर्थ--दीपङ्कर बुद्ध के समय से लेकर दशबलधारी (गौतम बुद्ध) होने तक चार असंख्य कल्पों के बीच (सिद्धार्थ गौतम बुद्ध ने) अपना एक भी पूर्व-जन्म निष्फल नहीं जाने दिया ।

२४०. दिसि अैमतैन अह स
पमण कळहै कि तुह रै स
मुनि सन्दु पेर दव स
पमण नैत यदि यनट दुन् अै स

अर्थ---आकाश में सर्वत्र विद्यमान तारों की गिनती की जा सकती है; लेकिन मुनीन्द्र तथागत ने अपने पूर्व जन्मों में याचकों को जो अपनी आंखों का दान दिया उसकी गणना नहीं की जा सकती।

२४१. परया पोळोव प स्
दुन् यदियनट अैङ्ग म स्
ओहु दनट दुन् इ स्
वीय महमेर गिरि सिर ट उ स्

अर्थ--सिद्धार्थ बुद्ध ने अपनी बोधिसत्व अवस्था में याचकों को अपने शरीर का इतना मांस दान दिया कि वह पृथ्वी भर की मिट्टी से भी अधिक होगा और उन्होंने लोगों को इतने सिरों का दान दिया कि उन सब का ढेर महामेरु पर्वत के शिखर से भी ऊंचा होगा।

२४२. दिवकुरु मुनि के रे
पटन् बुदुवन अत रे
दुन् लेयट सिरु रे
मदय दियकन्द मे सिव् सयु रे

अर्थ---दीपङ्कर बुद्ध के समय से गौतम बुद्ध होने के समय तक बोधि-सत्व ने जितने शरीरों का दान किया उन में जो रक्त था वह चारों समुद्र में विद्यमान जलराशी से भी अधिक था।

२४३. अपमुनि सस क ले
दुन् दनट नोव स स ले
देविन्दु अैन्दि सस ले
दैनुन् पवतीय सिसि मण्ड ले

अर्थ--शश (खरगोश) की योनि में जन्म ग्रहण करने के समय हमारे मुनीन्द्र तथागत ने बिना चँचल हुए जो दान दिया उसी के कारण देवेन्द्र शक्र ने चन्द्रमा में जो शश (खरगोश) के चित्र का लेखन किया वह शश-चित्र आज भी चन्द्र-मण्डल में विद्यमान् है ।

२४४. बुदुबल सिन् दै ने
नो कि वत् बोहो मे तै ने
वटु बै द उन् तै ने
मे कपै गिनि नो गनीय ए व ने

अर्थ--यहाँ हम और अधिक न कहें तो भी एक इतनी ही बात से बुद्ध-बल प्रकट होता है कि बटेर की योनि में जिस जगह निवास करते थे उस जंगल को इस कल्प में भी आग नहीं जलाती है ।

२४५. वन्दुरु व उपन् क ल
कळ अदिटनिन् दस ब ल
पुरुक् बट दण्डु व ल
दैनुत् नैत्तेय उन् उन् व ल

अर्थ--जिस समय तथागत बन्दर की योनि में उत्पन्न हुए थे, उस समय दशबलधारी ने जो दृढ़ संकल्प किया था उसके परिणाम स्वरूप उन उन जंगलों में उगने वाले बांसों में आज भी पोर नहीं होते ।

२४६. वन्दुरुव मह वन त
मिनिसकु वळिन् गोडल त
एमेका तम मर त
ओहुट मग पै केळे मह मे त

अर्थ--जब बोधिसत्व ने महान् जंगल में बन्दर की योनि में जन्म ग्रहण किया था तो गढ़े में गिरे हुए एक आदमी को बाहर निकाल कर उस की प्राण रक्षा की। उसी आदमी ने बोधिसत्व को मारने का प्रयास किया। तब भी बोधिसत्व ने महान् मैत्री से उसे (जंगल से निकलने का) रास्ता दिखाया।

२४७. पियरद येदु व द
कम्करू करत इस् सि न्द
मव वलपुत् वैळ न्द
केळे सम मेतम सत् मैसि व द

अर्थ--जब पिता राजा ने वध करने की आज्ञा दी, जब जल्लाद सिर काटने लगे और जब माँ विलाप कर रही थी तब उस समय केवल सात महीने की आयु रहने पर भी बोधिसत्व ने सभी प्राणियों के प्रति समान रूप से मैत्री भावना की।

२४८. गुणयेक बुदु न् ने
सिवि निरिन्दु वै उप न् ने
अैस उपुट दु न् ने
सितेहि पिरि सन्तो समै दु न् ने

अर्थ--शिवि राजा होकर उत्पन्न होने के समय जो अपनी आंखें निकाल कर दीं, वह संतोष से भरे चित्त से दीं--यह बुद्धों का ही गुण है।

२४९ पुणु यकु गेन दम त
विदुरु पण्डी कलै ए सु ग त
गल सैट योदुनु सै त
वैटेन अतुरेहि गणम् दैन ग त

अर्थ--जब बोधिसत्व ने विदुर पण्डित होकर जन्म ग्रहण किया था उस समय पुण्य यक्ष ने जो पर्वत लुढ़काया था वह पर्वत साठ योजन ऊंचा था यह सुगत ने उसके लुढ़कते लुढ़कते भी (अपनी सूक्ष्म बुद्धि से) जान लिया।

२५०. गिजिन्दु वै मुनि सेत ळ
विदि वैद्दवुट सिट व ळ
सिय तिन् कपा द ळ
दुन्ने सतोसिन् सवन् पैहैदु ळ

अर्थ--जब शान्ति स्वरूप तथागत ने गजेन्द्र होकर जन्म ग्रहण किया था तो गढ़े में छिपकर तीर चलाने वाले व्याध को अपने छः रश्मियों से चमकने वाले दाँत अपने ही हाथों से प्रसन्नता पूर्वक काट कर दे दिये।

२५१. दिव नयि व द नो म द
वद कैर रैगत गत वि द
अैत द दिव विस ते द
रैहैणि नोव् सिल् म रैक्के वे द

अर्थ--दिव्य नागराज की योनि में उत्पन्न होने के समय (लोगों द्वारा) बहुत कष्ट दिये जाने पर और शरीर को बींध कर ले जाने पर भी और स्वयं तेज-युक्त दिव्य विष वाले रहने के बावजूद बोधिसत्व ने क्या बिना क्रोध किये शील की ही रक्षा नहीं की?

२५२. महजनक वै पव र
नैसुणु तुरु दैक पल ब र
सपिरि रज सिरि है र
गोसिन् वन वैद केळे तवस र

अर्थ—श्रेष्ठ महाजनक राजा होकर उत्पन्न हुए रहने के समय बोधिसत्व ने फल-लदे मृत वृक्ष को देखकर सम्पूर्ण राज्य-श्री को छोड़ दिया और जंगल में जाकर तपश्चर्य्या करने लगे।

२५३. मुवरद वै मुनि वि रु
विदै विदै दुवन नर वि रु
वैटुना वळ गैम्बु रु
बला गोडला केळे बिय दु रु

अर्थ—जब मुनिवर तथागत ने मृगराज होकर जन्म ग्रहण किया था तो जब उन्होंने देखा कि उन्हें तीरों से बींधते हुए उनके पीछे दौड़ने वाला राजा गहरे गढ़े में गिर पड़ा है तो उसे गढ़े में से बाहर निकाल उसका भय दूर किया।

२५४. वन्दुरु वै एतर ग ङ्गः
पैन वे वैलक् बैन्द इ ङ्गः
वानर सेन् सम ग
गङ्गिन् एतर वै यन्ट केळे य ग

अर्थ—जब बन्दर होकर जन्म ग्रहण किया था तो कमर में लता बांधकर गंगा के उस पार कूद सारी बानर-सेना के साथ नदी को पार करने का रास्ता बनाया था।

२५५. मैस्सकु बोन वित र
लेहेयक् नो सोलवा वे र
मह ओसु पण्डि वैं ये र
दिनिय दम्बदिव रजुन् एक व र

अर्थ—पूर्व समय में महोषध पण्डित होकर जन्म ग्रहण के समय शरीर का इतना रक्त भी बिना गिराये जितना एक मक्खी पी लेती है, बोधिसत्व ने एक बार ही जम्बुद्वीप के सभी राजाओं को जीत लिया था।

२५६. सीलव रद वर दु
नुवर गेन रुपु नर नि न्दु
महत वद कर तु दु
केळे तम सित सिल्म पिरिसि दु

अर्थ—सीलव राजा होकर जन्म ग्रहण करने के समय जब शत्रु राजा ने शहर पर अधिकार करके बहुत कष्ट दिया तब भी बोधिसत्व ने अपने चित्त में शील को ही परिशुद्ध किया।

तथागत का धर्म

२५७. बला सत सित र ङ्ग
पैवसू दहम, मन र ङ्ग
सिदु कर सैप स स ग
सिटी पस् वा दहस् एक र ङ्ग

अर्थ—प्राणियों के चित्त की अवस्था जानकर तथागत ने जिस मनोहर धर्म का उपदेश दिया वह लोगों को स्वर्ग तथा सुख प्राप्त कराता हुआ पांच हजार वर्ष तक एक रस ही रहेगा।

२५८. बवदु क् विन्द त दिनि
सिटिन सत दैक नोम दिनि
गोड लनि यन स न्दिनि
दनट अम्बुदरुवन् द बैन्द दिनि

अर्थ——यह देख कि ऐसे प्राणी बहुत हैं जो संसार के दुःख को अतिशय करके भोगते हैं, बोधिसत्व ने उन का उद्धार करने के विचार से अपने स्त्री-बच्चों को भी बाँधकर दान कर दिया।

२५९. मगफल नियम को ट
पैहैद ओहु की दहम ट
वन् सत मोक् पुर ट
कियत् सूविसि असंकयक ट

अर्थ——स्रोतापत्ति मार्गफल आदि को निश्चय पूर्वक स्पष्ट करके दिये गये तथागत के धर्मोपदेश को सुन कर उसके प्रति श्रद्धावान होने से जिन प्राणियों ने मोक्ष-नगर में प्रवेश किया उनकी संख्या चौबीस 'असंख्य' कही जाती है।

२६०. दैडि बैल्मक् ने तिन्
मद दोम्नसक् सित तिन्
किसि अवियक् अ तिन्
नोगेन मरसेन दिनिय ए म तिन्

अर्थ——बिना टेढ़ी नजर से देखे, बिना चित्त में तनिक भी द्वेष भाव लाये तथा बिना हाथ में कोई भी हथियार लिये तथागत ने मार-सेना को अपने मैत्री-बल से ही जीत लिया।

२६१. गणित दत् अते किन्
नो इगेन देयक् पोत किन्
नो असा इवते किन्
मे लोव दैन निमविय मते किन्

अर्थ––न किसी गणितज्ञ से कुछ सीखा, न किसी पुस्तक से कुछ ज्ञान प्राप्त किया तथा और भी किसी बाहरी से बिना कुछ सुने तथागत ने स्व-बुद्धि से इस लोक के सम्वन्ध में समस्त जानकारी प्राप्त कर ली।

बुद्ध के अर्हत आदि नौ गुणों का वर्णन

२६२. रहसत् पव् नो को ट
केलेसरयनुत् दुरु को ट
निसिवूयेन् पुद ट
अरह यैयि नम् कियति मुनिन्दु ट

अर्थ––एकान्त में भी पाप-कर्म न करने वाले होने से, चित्त-मल को दूर कर दिया रहने से तथा पूजा के योग्य होने से मुनीन्द्र तथागत 'अर्हत्' कहे जाते हैं।

२६३. तुन् कल्हिम पैव ति
पदरुत् सियल् लोव अै ति
अतैम्बुल से दैन ग ति
एयिन् सम्मासम् बुदुनै थे ति

अर्थ––विश्व में तीनों कालों में विद्यमान रहने वाले जितने भी पदार्थ हैं उन सब को हस्तामलक की तरह जान लिया रहने से तथागत सम्यक् सम्बुद्ध कहलाये।

२६४. विद्दै नैण अट द
पस लोस् सरण गुणय द
अँतियेन् ए मुनिस न्द
पिहणु विज्जाचरण नम् ल द

अर्थ—आठ प्रकार का ज्ञान[1] प्राप्त किये रहने के कारण तथा पन्द्रह प्रकार के आचरण-गुणों[2] से युक्त होने के कारण मुनीन्द्र तथागत 'विद्याचरण सम्पन्न' कहलाये ।

२६५. यहपत् कोट ये तैयि
सुन्दर तैनट सैप तैयि
सोन्दुरु बस् किय तैयि
कियति ए मुनि रजुट सुग तैयि

अर्थ—क्योंकि उन की चाल (गति) सुन्दर रही, क्योंकि वे सुन्दर स्थान (=निर्वाण) प्राप्त थे तथा क्योंकि वे सुन्दर वचनों का व्यवहार करते थे, इसलिये वे मुनि-राज 'सुगत' कहलाते थे ।

२६६. तुन् लोव ततु लेस ट
दैन गेन नो दत् मे लोव ट
देसुयेन् नियम को ट
लोकविदु यैयि कियति मुनिन्दु ट

अर्थ—क्योंकि मुनीन्द्र ने तीनों लोकों की तत्त्वतः जानकारी प्राप्त करके अज्ञजनों को उस का निश्चयात्मक रूप से उपदेश दिया, इसलिये वे 'लोक-विद्' कहलाये ।

---

१. विदर्शना ज्ञान आदि आठ प्रकार का ज्ञान ।

२. शील आदि पन्द्रह प्रकार के शील-गुण ।

२६७. हैम गुणयेन् न न्दा
समं वैडि सतकु अैम दा
दियतेहि नैति स न्दा
अनुत्तर यथि कियति मुनि न्दा

अर्थ––क्योंकि सन्तोष उत्पन्न करने वाले सभी गुणों में कभी भी कोई भी समस्त जगत में न तथागत के समान हुआ है और न उन से बढ़कर हुआ है इसलिये मुनीन्द्र 'अनुत्तर' कहलाये।

२६८. बम्ब सुर यकुन् त द
दमन य कैरै तमन् ल द
सेत् दी मुनिन्दु स न्द
पुरिस दम् सारती नम् ल द

अर्थ––ब्रह्मा, देवता तथा यक्षों का दमन कर स्व प्राप्त शान्ति उन्हें दी। इसीलिये तथागत को 'पुरिसदम्मसारथी' (पुरुषों का दम करने वाले सारथी) कहा गया है।

२६९. बवकतरिन् ए ते र
लनुयेन् सतन् हैम व र
तिलोगुरु मुनिव र
वीय सत्ता नमिन् पुवत र

अर्थ––प्राणियों को हमेशा ही भव-कान्तार से पार उतारने वाले होने के कारण त्रिलोक गुरु मुनीन्द्र 'शास्ता' नाम से प्रसिद्ध हुए।

२७०. सिव् सस् सिय नै णिन्
दैन दैन्वीय कुलु णिन्
दुरुलयि अनुव णिन्
ए बुदु नम् वीय गुण पस णिन्

अर्थ—अपनी प्रज्ञा से चारों सत्यों का ज्ञान प्राप्त कर (अज्ञजना के प्रति) करुणा होने के कारण उन्हें उन सत्यों से परिचित कराया और अविद्या से दूर पहुंचाया। एकमात्र इन गुणों के कारण ही मुनीन्द्र "बुद्ध" कहलाये।

२७१. बेदुयेन् दहम् क न्द
बजनय केळेन् गुण क न्द
बग दहमिन् सस न्द
बैविन् बगवत् वीय मुनिस न्द

अर्थ—धर्म-स्कन्धों का विभाजन किये रहने से, गुण-स्कन्धों को धारण किये रहने से, ऐश्वर्य आदि 'भग' धर्मों से युक्त होने से मुनीन्द्र भगवान् कहलाये।

बत्तीस महापुरुष लक्षण

२७२. रन् मिरि वैडि लेस ट
वळगोड नोवी एक वि ट
वैद नैगेन मिहि पि ट
मे वैनि देपतुल्य अप मुनिन्दु ट

अर्थ—स्वर्ण चरण-पादुकाओं के समान, ऊंच-नीच विरहित, पृथ्वी पर एक ही साथ पड़ने और एक ही साथ उठने वाले-ऐसे चरण-तल हमारे मुनीन्द्र (बुद्ध) के थे।

२७३. नैब निम् दिसि निम ल
अर दहसेकिन् मनक ल
सियटक् रुवि नु दु ल
मे वैनि रियसक् देकेकि देयतु ल

अर्थ--जो एक सौ आठ चित्रों से चित्रित थे, जिनमें निर्मल नाभि और नेमी दृश्यमान थे, तथा जो हजारों आरों से मनोज्ञ थे--ऐसे रथ चक्र मुनीन्द्रों के दोनों चरण-तलों में अंकित थे।

२७४. पतुल् सतरक् को ट
बेदुमेन् एकक् विलुम्ब ट
दिलि रन् पलस् व ट
लेसिन् दिगु विलुम्बै अप मुनिन्दु ट

अर्थ--यदि चरण-तल के चार हिस्से किये जायें तो उनमें जो एक दीर्घ पार्षणी-अंश है वह हमारे मुनीन्द्र बुद्ध का ऐसा था जैसे कोई स्वर्ण-कंदुक चमक रहा हो।

२७५. अडुवै डिनू वि त र
इङ्गुल पल से पैहैस र
र तौङ्गिलिय मुनि व र
मोलोक् दिक् अक् सिहिन् मनह र

अर्थ--विस्तार में छोटी-बड़ी नहीं, किन्तु समान, हिंगुल के पत्तों के समान प्रभास्वर, मृदु, दीर्घ, सूक्ष्मांग, मनोहर तथा जो रक्तवर्ण थीं--ऐसी अंगुलियां मुनीन्द्र बुद्ध की थीं।

२७६. पिटिपस इदिरि पि ट
बैलवत् दे अत् वैरै सि ट
पटिपतुल पेनेन ट
उस्वै सिटि बोलट वेयि मुनिन्दु ट

अर्थ--पीछे की ओर से, आगे की ओर से अथवा दायीं या बायीं किसी भी ओर से कोई पाँव के तल्ले की ओर देखता उसे भगवान् के पाँव का गिट्टा ऊंचा ही दिखाई देता।

२७७. मुलिन् दळ सिहिन ग
वट वै सिटि मस् एक र ङ्ग
सोन्दुरु अैल् गैय र ङ्ग
केरेयि मन दङ्ग मुनिन्दु युगद ङ्ग

अर्थ--ऊपर की ओर से स्थूल किन्तु नीचे उतरते उतरते पतली, चारों ओर समान मांस होने से गोलाकार शस्य-गर्भ के समान सुन्दर मुनीन्द्र की दोनों जंघायें (लोगों के) चित्त को आकर्षित करती थीं।

२७८. दिलि मुनि दिव ने तिन्
कुदु मिटि नोवो निय तिन्
नो नैमी सिट ग तिन्
दे दग पिरिमदिनेय दे अ तिन्

अर्थ--दिव्य नेत्रों से दीप्त मुनीन्द्र न तो वामन थे और न शरीर से झुके थे, तब भी वे अपने दोनों हाथों से दोनों घुटनों का स्पर्श करते थे।

२७९. अँदुरकु विसिन् क ळ
दैल् कवुलु से निकस ळ
अत पय मुनि ल क ळ
अँङ्गिलि सम अतुरु वेयि पैहैदु ळ

अर्थ—मुनीन्द्र के हाथों और पांवों की प्रभापूर्ण अंगुलियां एक दूसरी से समान दूरी पर थीं। वे किसी हुश्यार बढ़ई द्वारा निर्मित शुद्ध झरोखे के समान थीं।

२८०. पोळसिन् सियक् व ट
पहन् गितेलेहि लू य ट
कपु पुलुनक् ले स ट
मोलोक् अत् पाय अप मुनिन्दु ट.

अर्थ—सौ बार घी में भिगोई हुई कपास की रूई जितनी कोमल हो जाती है उतने कोमल हमारे मुनीन्द्र के हाथ-पांव थे।

२८१. पियुम् पेति अँतुळ ट
वैद सिटिन केमि विलस ट
वैदै सिटि कय तुळ ट
पुरिस् लकुणैत्तेय मुनिन्दु ट

अर्थ—जैसे कँवल के पत्तों के भीतर कर्णिका घुसी और उनसे ढकी रहती है, उसी प्रकार मुनीन्द्र का पुरुष-लक्षण उनके शरीर के भीतर धँसा और ढका था।

२८२. दैहिगुंलिन् मैद ळ
ओप् ला बहा दिवि द ळ
गुरु पिरियम् ल क ळ
मुनिन्दु रुव रन् रुवेव् निकस ळ

अर्थ---जिसे जाति-हिंगुल से मांज कर उसकी मैल साफ कर दी गई हो, जिसे चीते के दांतों से रगड़कर चमका दिया हो तथा जिसे गेरू के परिकर्म द्वारा अलंकृत कर दिया हो ऐसे निर्मल स्वर्ण के समान मुनीन्द्र का स्वरूप था।

२८३. अलपत दिय लेस ट
दैलि तेल् रजस् हैम वि ट
गत नोरन्दन लेस ट
सियुम् सिवि अैत्तेय मुनिन्दु ट

अर्थ---मुनीन्द्र के शरीर की चमड़ी इतनी पतली थी कि जिस प्रकार गीले पत्ते पर पानी की बूँद नहीं ठहरती उसी प्रकार मुनीन्द्र की देह पर जाला, तेल या धूली कभी भी नहीं टिकती थी।

२८४. दुट वेयि पेरे मय
दैक दैक रिसि नोये मय
मुनिन्दु अैङ्ग रो मय
देकेक् अेक तैन नो सिटिने मय

अर्थ---उनके दर्शन करने मात्र से ही प्रेम उपजता है। बार बार दर्शन होते रहने पर भी मन नहीं भरता। मुनीन्द्र के शरीर पर किसी भी एक स्थान से दो रोम (=बाल) एक साथ नहीं उगे हैं।

२८५. निल्मिणि रस तर ङ्ग
विहिदुवा सिटि मनर ङ्ग
हैंमलोम् मुनिन्दु अँ ङ्ग
वळलु ही उड बला सिटि अ ग

अर्थ—मुनीन्द्र के शरीर के प्रत्येक रोम से नील-माणिक्य रश्मि-तरंग निकल कर मनोहर रूप धारण किये थीं और उनका प्रत्येक रोम घुंघराला हो आकाश अभिमुख था।

२८६. नेत नेत पियक रुव
तिरसर गुणेन् विदु रुव
लेसिन् महबम्ब रुव
मुदु वै इरिदु वै सिटी मुनि रुव

अर्थ—जो कोई देखे उसी को प्रिय लगने वाला, स्थिरता में वज्र के समान और मृदुता तथा ऋजुता में महाब्रह्मा के रूप के समान मुनीन्द्र (तथागत) का रूप था।

२८७. दे अत् पिट पा पि ट
दे उकेहि कन्देहि नहक ट
नो पैनेन लेस उस ट
पिरुणु मस् अैत्तेय मुनिन्दु ट

अर्थ—मुनीन्द्र के दोनों हाथों पर दोनों पांवों पर, दोनों अंशकूटों पर तथा दोनों स्कन्धों पर इतना मांस था कि उनकी नसें दिखाई नहीं देती थी।

२८८. सी रदुगे हिम द ड
पिरुणु वन् वेयि पेर क ड
पेर कड द पसु क ड
पिकणु वन मुनिन्दुगे दिय वै ड

अर्थ---हिमालय-वन में रहने वाले केसरी सिंह के शरीर का अगला भाग जैसे भरा-भरा होता है, वैसे ही लोकहितैषी बुद्ध के शरीर का अगला और पिछला भाग-दोनों भरे भरे थे ।

२८९. कटियेहि पटन् को ट
कन्दट दक्वा सम को ट
रन् पलङ्गक् लेस ट
पिहिटि मस् अैत्तेय मुनिन्दु ट

अर्थ---सुनहरी बरछी के फलक के समान, कटि प्रदेश से कंधे तक मुनीन्द्र के शरीर पर मांस था।

२९०. मुलु तुन् लो वि य त्
दनयन् करण नो वि य त्
मुनिन्दुन्गे क य त्
दिगिन् एक पमण वेयि बम्ब य त्

अर्थ---तीनों लोकों के सभी पण्डितों को निस्तेज कर सकने वाले मुनीन्द्र का शरीर लम्बाई में व्याम मात्र था।

२९१. सदहम् देसन व र
नो इपिलि नहर पैहैस र
मेन् रन सिहिगुं बे र
व ट्वै मोनवट सिटी मुनिक र

अर्थ—सद्धर्म का उपदेश करने के समय मुनीन्द्र का कण्ठ अनुत्तेजित नसों से युक्त रहता था, प्रभापूर्ण होता था और स्वर्णिम मृदंग भेरी के समान वर्तुलाकार तथा मनोज्ञ होता था।

२९२. मुनि सन्दुगे उगु रा
सत् सियक् रस नह रा
सिटियेन् तुडुपु रा
यँपेयि मन्द अहरेकिन् सिरु रा

अर्थ—मुनिचन्द्र (तथागत) के गले की सात सौ रस वाहिनी शिराओं का मुंह ऊपर की ओर था। इसलिये तथागत के शरीर को थोड़े ही आहार की आवश्यकता पड़ती थी।

२९३. दोळोस्वक सन्दु गे
मण्डल हनु सी रजु गे
परया एक र ङ्गे
पिरुणु हनु देकय मुनिसन्दु गे

अर्थ—द्वादशी के चन्द्र-मण्डल और सिंह राजा के जबड़ों को एक साथ मात देने वाले मुनीन्द्र के भरे हुए दोनों जबड़े थे।

२९४. पिहिटि दत् दे निक ट
देतिसेक् वेय दनह ट
उस् मिटि नोवै रुव ट
पिहिटि दत् सतळिसेकै मुनिन्दु ट

अर्थ—लोगों के ऊपर-नीचे के दोनों जबड़ों में लगे दान्तों की संख्या बत्तीस होती है। किन्तु मुनीन्द्र के मुँह में ऊंच-नीच विहीन, सुन्दर दान्तों की संख्या चालीस थी।

२९५. गा अैतुळत् पिट त्
सम कोट तुबू सक् प त्
विलसिन् मुनिन्दु द त्
सिटिय उस् मिटि नोवी मदकु त्

अर्थ—भीतर और बाहर से रगड़कर समान बना दिये गये, शंख-पत्र (युगल) के समान मुनीन्द्र के तनिक भी छोटे बड़े नहीं थे।

२९६. तेलितुडेकिन् सोन्दु रु
अैन्दी हिरि लेसिन् पैतु रु
मदकुत् नो वै सिदु रु
विदुरु से सिटिय दत् मुनि वि रु

अर्थ—मुनिवीर (तथागत) के वज्र के समान सुन्दर दाँत ऐसे थे कि तूलिका के सिरे से खींची गई लकीर के समान अन्तर दिखाने वाला थोड़ा भी विवर उन में नहीं था।

२९७. सुदु रस् मनर ङ्गे
लेसिन् सुरगङ्गे तर ङ्गे
विहिदेन दस दि गे
सतर दळदाय मुनि सन्दु गे

अर्थ—आकाश-गंगा की तरंगों के समान दसों दिशाओं में सुन्दर श्वेत रश्मियाँ प्रसारित करने वाली मुनीन्द्र की चार दाढ़ें थीं।

२९८. दिग पै देकन् सि ल
मोलक दकवा नैहैतु ल
पललिन् मुलु नळ ल
वसन दिवै मुनिसन्दुगे पैहैदु ल

अर्थ—दीर्घत्व प्रकाश करने वाले दो श्रवण-रन्ध्र, कोमलता प्रकट करने वाले दो नासिका-छिद्र, तथा अपनी चौड़ाई से सारे माथे को ढक सकने में समर्थ प्रभा पूर्ण जिह्वा मुनीन्द्र की थी।

२९९. कुरवी केविलि ह ण्ड
मियुरैयि कियन बस मै ड
देवा तुति तुड तु ड
पवतिनेय मुनिसन्दुगे कट ह ण्ड

अर्थ—इस कथन को कि कुर्वी-कोकिल का स्वर मधुर होता है दबा देने वाली मुख-वाणी तथागत की थी, जिसकी हर मुँह स्तुति करता था।

३००. इन्दु निल् मैणिक् र स
सरि कोट नोकिय हैकि ले स
वडवन सत सतो स
पहन् निल् पैहैय मुनि युवलै स

अर्थ--जिनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि इन्द्र नील मणी की। रश्मियाँ भी उनके समान हैं तथा जो प्राणियों का संतोष बढ़ाने वाली थीं ऐसी नील-प्रभायुक्त दो आंखें मुनीन्द्र की थीं।

३०१. एकेणेहि मनर ङ्गे
उपन् रतु वस्सकु गे
अैसिपिय गुळि र ङ्गे
पहन् ऐसगुलिय मुनि सन्दु गे

अर्थ--मुनीन्द्र की आंखों की गोलियाँ वैसे ही लाल लाल थीं जैसी मनोज्ञ उसी क्षण उत्पन्न हुए रक्त वर्ण बछड़े की होती हैं।

३०२. अैद रियनक् दिग ट
हल सन्द मण्डल से व ट
बैम मैद नलल् पि ट
दिलेन उणुलोमिय अप मुनिन्दु ट

अर्थ--हमारे मुनीन्द्र की भौओं के बीच माथे के ऊपर ऊर्ण-रोम ऐसे चमक रहा था जैसे चन्द्र मण्डल को गज भर खींच कर बाद में छोड़ दिया गया हो।

३०३. दिय बुबुलक् ले से
वट वँगेन सिटि सोन्द से
निल् मिणि रस् ले से
बैंबलि अप मुनि सन्दुगे सिर से

अर्थ---जल के बुलबुले के समान गोलाकार तथा सुन्दर हमारे मुनीन्द्र का सिर नील माणिक्य की रश्मियों के समान चमकता था।

३०४. मेलेसिन् बुदुन् ब न्द
देतिसेक लकुणु मनन द
ए बैविन् मुनिन्दु स न्द
पहन् तुरु से दिलेयि हैमस न्द

अर्थ---इस प्रकार बुद्ध के शरीर में बत्तीस मनोज्ञ (महापुरुष) लक्षण थे। इसीलिये मुनीन्द्र प्रदीप-तरु की तरह सदैव प्रकाशमान् थे।

अस्सी अनुव्यञ्जन

३०५. नेतैतिब उपन् जन
करवन मनोरं जन
मुनिन्दुगे निरं जन
असूवेक अैङ्गेहि अनुवैं जन

अर्थ---ऐसे जनों का मनोरंजन करने के लिये जिनकी उत्पत्ति चक्षु-सहित हुई है, वीतराग मुनीन्द्र की देह में अस्सी अनुव्यंजन थे।

बुद्ध-प्रातिहार्य

३०६. तम वन देस नैमि इस केनेकु न्ने
देस वन्दिना लेस नो नैमिय दे न्ने
तम यस तुति कळ वनट दन न्ने
कलेकत् पिरिदेव् वैद्द नो दे न्ने

अर्थ—जो सिर अपनी ओर झुक जाता था उस सिर को तथागत फिर किसी अन्य की वन्दना करने के लिये झुकने नहीं देते थे और जो जन तथागत का यशोगान करते थे उसे फिर कभी भी रोना नहीं होता था।

३०७. तम नम सिहि कळ सितट सतु न्ने
हैम दोम्नस् दुक् वैद्द नो दे न्ने
हैम लेड सुववन लेसट दन न्ने
तम उपतैमै बेहेदक् कोट दु न्ने

अर्थ—जो प्राणी तथागत के नाम का स्मरण करते हैं, तथागत उनके चित्त में किसी भी प्रकार के दौर्मनस्य-दुःख को उत्पन्न होने नहीं देते। जनता के प्रत्येक रोग के शमन के हेतु तथागत ने अपना जन्म ही औषध रूप करके दिया।

३०८. तम वेत दिक् कळ अत पै दे या
सिङ्गमनकट दिक् करणु नो दे या
तम वेत येमि एसवू पा दे या
निरयट वैद दुक् विंदिनु नो दे या

अर्थ—जो हाथ श्रद्धा से एक बार तथागत के सामने फैल चुका उस हाथ को फिर तथागत किसी के सामने भीख मांगने के लिये फैलने नहीं देते। जो पांव तथागत की ओर आने के लिये उठ चुके उन्हें फिर तथागत नरक में जाकर दुःख भोगने नहीं देते।

३०९. सिहि लैल् पवनिन् गिम् म डवालिय
मे सियल् लोव पिय बस् दो डवालिय
विय वुल् सत सित तोस् व डवालिय
गन बोल् बिम महण्डिन् ह ण्डवालिय

अर्थ—शीतल वायु के चलने से ग्रीष्म ऋतु शान्त हो गई। तमाम लोग प्रिय वचन बोलने लगे। व्याकुल प्राणियों का चित्त संतोष को प्राप्त हुआ। घनी पृथुल पृथ्वी महान् घोष से गूंज उठी।

३१०. मुहुद द पुप् रत् पण्डेर गै वैस् विय
नुब तल पिपि मल् वियनिन् वैस् विय
मुलु लोव सुवन्दैति मल् वैसि वैस् विय
सतर अपासत सुवसे वैस् विय

अर्थ—समुद्र भी लाल और सफेद पुष्पों से ढक गये। आकाशतल खिले फूलों के वितान से तन गया। समस्त विश्व सुगन्धित फूलों से आच्छादित हो गया। चारों नरकों के प्राणी सुखपूर्वक रहने लगे।

३११. अट तुरु सिय सुब लकुणेन् सिरिसत्
यट कैरै बव दुक् एबुदुन् बुदुव त्
वट सिय योदुनेक गन गिनि दैल्ग त्
अट मह नरकय वियवुल् सियप त्

अर्थ—एक सौ आठ शुभ-लक्षणों की श्री से युक्त बुद्ध ने जब भवसागर के दुःख का मर्दन कर बुद्धत्व लाभ किया तो उस समय चारों ओर सौ योजन तक अग्नि-ज्वाला से दहकते हुए आठ महानरकों[1] में कँवल के पत्ते खिल उठे।

---

१. संजीव, कालसूत्र, संघात, रौरव, महारौरव, ताप प्रताप, तथा महाअवीचि।

३१२. गोत मनम् एबुदुन् बुदुवन स न्द
पेत लोवे सागिनि दुक् मुल् सि न्द
बीत करण लोदिय उन मुव वै द
सीत अमा मियुरस विय एम स न्द

अर्थ---जिस समय गौतम नाम के बुद्ध ने बुद्धत्व लाभ किया तो प्रेत-लोक (के प्रेतों) की भूख शान्त हो गई और उन के मुँह में पड़ने वाला पिछला लोहा शीतल अमृत मधुर रस में परिणित हो गया।

३१३. अविगत् यमपल् केळि नन्दन वन
बलवत् कम्कटुलिन् नन्दन वन
असिपत् वन बियपत् नन्दन वन
सिरिगत् सुरसेन् केळि नन्दन वन

अर्थ---जो आयुद्य-हस्त नरक-पालों का आनन्ददायक क्रीड़ास्थल था, जहाँ उत्पन्न नाना प्रकार की बध-क्रियाओं से भय-भीत नाना जन प्रवेश पाते थे उस असिपत्र नामक नरक ने देव-सेना के क्रीड़ा स्थल नन्दन वन की शोभा प्राप्त कर ली।

३१४. सत् वग वेत मह मेतट अमावट
पत् वत उन् बुदुबवट अमावट
पत् वन नेरिसत् मुवट अमावट
पत् विय दिलि रत् यवट अमावट

अर्थ---प्राणी-वर्ग मात्र के लिये मैत्री तथा अभायावीपन स्वरूप अमृत-रूपी बुद्धत्व प्राप्त करने के समय नारकीय प्राणियों को दुःख देने के निमित्त उनके मुँह में डाली जाने वाली तप्त लोह-गुली अमृत-गुली बन गई।

३१५. बियकरु गिनि दैल् विसिर तुमु ल्वन
निरतुरु कटु सोळसंगुलिन् तु ल्वन
निरतुरु ओसुपत् पिहिटि इम्बु ल्वन
सुरतुरु विय सत सतोस उपु ल्वन

अर्थ—जो महान् भयङ्कर अग्नि-ज्वाला बिखेरने वाले सोलह अंगुल स्थूल सतत काटों से युक्त उत्सद नरक में लगातार प्रतिष्ठित शाल्मली-वन था वह प्राणियों को सन्तोष देने वाले कल्प-वृक्ष (वन) के समान हो गया।

३१६. करवैल् अवुलिन् निरिसत् वनद ङ्ग
यमपल् विलियेन् अदना लंगल ङ्ग
अैमकल् दलवुल् वेतरणी ग ङ्ग
सिहि लैल् दिय विय विलसिन् सुरग ङ्ग

अर्थ—जहाँ आरे की धार जैसी धार वाली लतायें बंधी हैं, जहाँ नारकीय प्राणियों को नरक पाल (पानी में से मछली खींचने की तरह) कांटे से पास पास खींच लेते हैं, वह हमेशा जलती रहने वाली वैतरणी-गङ्गा आकाश गङ्गा की भाँति शीतल जल युक्त हो गई।

३१७. गन बोल् यक बल निति गिनि गेन र त्
अैमकल् सिलि लोत् मेन् सिहि लैल् व त्
गिनि दैल् लोदिय लोकुम्बु निरय त्
मनकल् मलवुल पिरिकुम्बु सिरि ग त्

अर्थ—अत्यन्त घना, निरन्तर आग में जलता हुआ, तप्त लोह-कपाल सदैव शीत-स्पर्श जैसा शीतल हो गया। उसी समय आग की ज्वालाओं से युक्त पिछले लोहे वाले लोह कुम्भी पाक नरक ने भी मनोज्ञ पुष्पों वाले पूर्ण-कलश की शोभा धारण की।

३१८. दरु णु वै दस दहसक् सक्वळ तु र
दुरु नोव सिटि एक रंगटम अैमव र
दुरु विय लोवैन्दिरि निरये गनन्द र
इरु सन्दु सुवहस् वन् सेन् एक व र

अर्थ--दस हजार चक्रवालों तक हर समय एकाकार स्थित लोकान्त-रिक नरक का घनान्धकार एक बारगी ही इस तरह अन्तर्धान हो गया मानों एक लाख चन्द्र-सूर्य्य एक साथ उदय हो गये हों।

३१९. हिम वत मेर गिरि कुल गिरि सिर से
हैम दिवयिन सक् वळ दस दह से
बिम सिट तुरु सिरटम एक बन्द से
हैम तैन हैम मल् पिपुनेय एम से

अर्थ--हिमालय-पर्वत, मेरु-पर्वत तथा अन्य पर्वतों के शिखर पर; दस हजार चक्रवालों के हर द्वीप में पृथ्वी से लेकर वृक्षों की फुनगियों तक उस समय सर्वत्र हर प्रकार के पुष्प सुपुष्पित हुए।

३२०. उरगुन् गे गत दुहु लिन् रै स्वू
मोनरुन् गे पिल् कलस्विन् पि स्वू
दिवियन् गे केळि मण्डलेहि रै स्वू
वे हेलुन् अं दुलुयेन् कर कै स्वू

अर्थ--उस समय साँपों के शरीर पर लगी हुई धूल मोरों की पिच्छल से झाड़ी जाती थी और सिंहों के क्रीड़ा-मण्डल में इक्कठे हुए मृग अपने सींगों के सिरों से सिंहों की गरदन खुजलाते थे।

३२१. उरगुन् सैतपू मुगटिन् अर णे
मैडियन् निदि गैव्वू उन् दर णे
सिवलुन् केळिमिन् सिटि तुरु सेव णे
सहवुन् पेमकेळि केळैवू एके णे

अर्थ—(मुनीन्द्र के प्रभाव से) नेवले जंगल में साँपों का संतर्पण कर रहे थे और उन सांपों के फन में मेढक सो रहे थे। जिस समय गीदड़ वृक्ष की छाया के नीचे क्रीड़ा कर रहे थे उसी समय वहीं खरगोश अपनी प्रेम-क्रीड़ा कर रहे थे।

३२२. उरङ्गुन् गे पेण मडलट व णवू
गुरुलुन् पिय तेपुलेन् ओसु अँ णवू
नरयन् मेन् सेनेहस एक प णवू
तुरङ्गुन् मिहिवुन् पियबस् बै णवू

अर्थ—(मुनीन्द्र ने) साँपों के आहत हुए फनों पर गरुड़ों से प्रियवचन-पूर्वक औषध का विधान करवाया। जिस प्रकार आदमी एक-प्राण होकर स्नेहपूर्वक बातचीत करते हैं उसी प्रकार उन्होंने घोड़ों और भैंसों से प्रेम-पूर्वक बातचीत कराई।

३२३. बळलुन्गे वेत निति अर त रवू
मिहियन्गे सित अैति बिय अँ रवू
दिवन्दुन् गे वेत पेर तर वे रवू
कपुटन् गे सित सेनेहस कै रवू

अर्थ—(मुनीन्द्र ने) चूहों के चित्त में बिल्ली-बिल्लों के प्रति जो दृढ़ भय निरन्तर बना रहता था उसे दूर कर दिया। उल्लुओं के प्रति जो पूर्व-काल से वैर-भाव चला आ रहा था उसे कौओं के स्नेह में परिणित कर दिया।

३२४. केसरुन् गेन और दुन् निय पन्दु रिन्
गिजिन्दुन् सनहा लू रस गोदु रिन्
गिजिन्दुन् गेन वतकळ करपोकु रिन्
केसरुन् गिम् दुरुलू दिय दह रिन्

अर्थ--(मुनीन्द्र ने) केशरी सिंहों के द्वारा अपने पंजों में लाये गये स्वादिष्ट शिकार से गजेन्द्रों का संतर्पण करवाया और गजेन्द्र अपनी सूण्ड द्वारा जिस जल का सेवन कर आये थे उसकी जलधारा से सिंहों की ऊष्णता दूर करवाई।

३२५. गोलुवन् की मियुरस गी लेस टा
बिहि रन् देन अत्तल तालम टा
दैयन्दुन् अँसै दुन् रसन्दुन् लेस टा
पिलुनन् दन रङ्ग कै रँवू रुव टा

अर्थ---(मुनीन्द्र ने) गुंगों द्वारा गाये गये मधुर गीतों के अनुसार बैहरों द्वारा दिये गये तालों पर जन्मान्ध अन्धों के लिये आंखों के अंजन के समान लङ्गड़े लोगों से सुन्दर नृत्य करवाया।

३२६. मिनिसत् बव तिरिसन् अत् बवल द
हैम सत् वग विन्दिना हैम दुक् त द
बैलुवत् दस दहसक् सक्वळ वै द
मद कुत् नैत ए बुदुन् बुदुवन स न्द

अर्थ---मनुष्य-योनि में अथवा पशु-योनि में सभी प्राणी सभी प्रकार के जितने भी कठोर दुःखों का अनुभव करते हैं, यदि दस हजार चक्रवालों में भी प्रवेश करके देंखा जाता तो मुनीन्द्र के बुद्धत्व लाभ के समय किसी भी प्राणी को थोड़े भी दुःख का अनुभव नहीं करना पड़ रहा था।

३२७. द स देस मैदहळ मेन् निकस ळि वी
नि स ल बै सिव् सयुरम रसैति ळि वी
तोस कैरै मुलु लोव गत् पुद के ळि वी
द स दहसक् सक् वळ एक हे ळि वी

अर्थ––दसों दिशायें बीचो-बीच के समान परिशुद्ध हो गईं। चारों समुद्र निश्चल रस-भाजन के समान हो गये। समस्त जगत के लोग प्रसन्न होकर पूजा-क्रिया में लग गये। दस सहस्र चक्रवाल एकालोक से आलोकित हो गये।

३२८. मुलु तुन् लोव गेय गेय हळ दो रवी
दन कैन् वद बन्दनयेन् तो रवी
हैम तैन् दिव सुवन्दिन् मन ह रवी
मे ले सिन् मुलु लोव मह पेळह रवी

अर्थ––समस्त तीनों लोक में घर घर के द्वार विवृत हो गये। जन-समूह वध-बन्धन से मुक्त हो गया। प्रत्येक स्थान दिव्य सुगन्धियों से सुगन्धित हो गया। इसी प्रकार समस्त विश्व एक महान् प्रातिहार्य हो गया।

३२९. ए बसिन् ए बसट करवा तुतिन द
वेसेसिन् तम नैण पमनिन् पिरि सि न्द
अहसिन् बाना मेन् एक पिनि बि न्द
मे लेसिन् ए मैतिन्दु बुदुगुण की स न्द

अर्थ—जिस समय उस मन्त्री ने उन उन वचनों से अपने सीमित ज्ञान के अनुसार आकाश से ओस की एक बूंद पृथ्वी पर लाने की तरह विशेष स्तुति (=बुद्ध गुणानुवाद) की (आगे से सम्बन्धित)

३३०. ओहु तेपुलेन् सुबै सि
असा मुनिन्दुन् गुण नि सि
नैवतत् असन रि सि
निरिन्दुगेणे मे लेसिन् पिळिवि सि

अर्थ--(उस समय) उसके सुभाषित वचनों से मुनीन्द्र के गुणों को भली प्रकार सुनकर पुनः सुनने की इच्छा से (लिच्छवी) राजाओं ने इस प्रकार कहा:--

३३१. उतुमैयि यन लोव ट
बम्बसुर नरन् पसु को ट
पैवसू नियम को ट
मेतेक् गुण अैद्द? ऐ मुनिन्दु ट

अर्थ--दुनिया में जिन्हें अच्छा माना जाता है ऐसे ब्रम्हा, देवता तथा मनुष्यों को पीछे छोड़ जाने वाले इस प्रकार के स्थिर गुण क्या उन मुनीन्द्र में (सचमुच) हैं?

३३२. मुनिन्दुन् गुण वेसे स
दैन गत नो ही ततु ले स
निरिन्दुन् की ए ब स
असा ए मैतिन्दु किय यि मे ले स

अर्थ--मुनीन्द्र के गुण-विशेष को तत्वतः न जान सकने के कारण कहे गये राजा के वचनों को सुनकर उस मन्त्री ने इस प्रकार प्रत्युत्तर दिया --

मन्त्री का उत्तर

३३३. बम्बसुर लोव देर ण
हैम तैन दनन् अपम ण
कियतत् लैब नुव ण
पमण नैत अप बुदुन्गे गु ण

अर्थ—ब्रह्मलोक, सुरलोक तथा पृथ्वी के संख्यातीत लोग अपने अपने ज्ञान के अनुसार बुद्ध के गुणों का वर्णन करें तो भी हमारे बुद्ध के गुणों का पारावार नहीं।

३३४. नितोर पैरुमन् द स
सार सैकि कप् सुवह स
नुपुरा ओवुन् ले स
केसे पैवसिय है कि द ? गुण रै स

अर्थ—बुद्ध के समान ही जिसने चार लाख कल्पों तक (दान, शील आदि) दस पारमिताओं की पूर्ति न की हो, वह बुद्ध की गुण-राशि को कैसे प्रकाशित कर सकता है ?

३३५. उन् रु सिरि दैक ने त
ओवुन् सन्दहस् वैद सि त
नो पहन् केनेक् नै त
एयिन् उन् गुण कियत् हिम् नै त

अर्थ—ऐसा कोई नहीं है जो उनकी रूप-श्री के दर्शन करे और जिसके चित्त में उनका धर्म प्रविष्ट हुआ हो और वह उनके प्रति श्रद्धावान न हो। इसी से बुद्ध के गुणों को कहकर सीमित नहीं किया जा सकता।

३३६. बुदुगुण मह सुहु द
नुदुटु पर तेर हैम स न्द
मा की गुण मे स न्द
एयिन् गत् वैन्न एक दिय बी न्द

अर्थ--बुद्ध-गुण रूपी महासमुद्र का दूसरा छोर किसी को कभी भी नहीं दिखाई देता। इस समय मेरे द्वारा जो बुद्ध-गुण कहे गये हैं वे उस महासमुद्र से ग्रहण की गई एक बूंद के समान हैं।

३३७. पोळोवेहि पस् र ङ्गिन्
दिसि बुदुगुणय सैम गिन्
म की गुण में र ङ्गिन्
एयिन् गत् पस् वैन्न निय गिन्

अर्थ--बुद्ध गुण पृथ्वी भर की समग्र मिट्टी के समान हैं। उन में से मेरे द्वारा कहे गये बुद्ध-गुण उस मिट्टी में से नखाग्र पर ग्रहण की गई मिट्टी के समान हैं।

३३८. बुदु गुण मह अह स
नुदुटु निम्मक् दस दे स
म की बुदु गुण ले स
वैन्न मैसि पियेनि सेवि नुब कुस

अर्थ--बुद्ध-गुणों रूपी महान् आकाश की सीमा दसों दिशाओं में नहीं दिखाई देती। मैंने बुद्ध-गुणों का जो वर्णन किया है वह तो मक्खी के पर से ढके जा सकने वाला आकाश की तरह थोड़ा-सा है।

बुद्ध-कुल

३३९. मुनिन्दुन् गुण मह त्
असा निरिन्दो तुटु सि त्
ओहु पुर कुल पुव त्
के बन्दु दैयि ओहु अतिन् पुलुवु त्

अर्थ--मुनीन्द्र (तथागत) के गुणों का वर्णन सुन (लिच्छवी) राजागण सन्तुष्ट चित्त हुए। तब उन्होंने उसी अमात्य से पूछा कि उनके नगर और कुल का हाल चाल कहो।

३४०. ए सन्द कुल पर पु र
पुर इसुरु पिरि पिरि व र
वरङ्गन रुसिरि स र
सरा सेले सिन् किययि मैति व र

अर्थ--तब उस मन्त्री ने तथागत की कुल-परम्परा का, ऐश्वर्य्य से भरी नगरी का, परिवार का तथा रूप श्री की सार स्वरूप वरागंनाओं का इस प्रकार वर्णन किया।

३४१. बम्ब उपतिन् सैप त
पेर नरलोवट कैरै से त
नरन् कळ सभ्म त
बोय निरिन्देक् महा सम्म त

अर्थ--जिन्होंने पूर्वकाल में मनुष्य-लोक पर अनुकम्पा की थी तथा जो ब्रह्मलोक से च्युत होकर मनुष्य होकर उत्पन्न हुए थे ऐसे महासम्मत नामक एक राजा हुए। इन्हें लोगों ने ही राज्य-पद पर प्रतिष्ठित किया था।

३४२. रिवि कुलेहि मन न न्द
ओहु दरु मुनुबुरु वै सो न्द
सक् विति इसुरु ल द
उतुम् निरिन्दुन् गेन् सैदुम् ल द

अथ––मनोज्ञ रविकुल में उस महासम्मत राजा के पुत्र-नाती सुन्दर चक्रवर्ती ऐश्वर्य धारण किये हुए थे। उन उत्तम नरेन्द्रों से सज्जित (आगे से सम्बन्धित)

३४३. लत् सक् देवि प देवि
देवियनट वू कुल देवि
मन् दातु नर देवि
पलन् कित् दिय कन्दिन् कुल देवि

अर्थ––शक्र देवेन्द्र पद प्राप्त, देवताओं के भी कुल-देवता मान्धाता राजा हुए, जिन्होंने अपनी स्वच्छ कीर्ति रूपी जल से अपने वंश को धोया।

३४४. मुलु सक्वळ वैज म्बि
लित अवगुणेन् नो कैल म्बि
बोसत् गुणेन् दै बि
महा सुदसुन् रजुन् गेन् हे बि

अर्थ––जिन्होंने सारे चक्रवाल को व्याप्त कर रखा था, जिनका चित्त दुर्गुणों से लिप्त नहीं था तथा जो बोधिसत्व गुणों से युक्त थे ऐसे महा-सुदर्शन (नामक) नरेन्द्र से (वह मनु वंश) शोभित था।

३४५. पदनिय किरण म लि
कळ निरिन्दुन मुदुन् म लि
बन्द लोव जय केहे लि
पसिदु मखदेव् रजुन्गेन् दि लि

अर्थ--जिनके पांव के नखों से रश्मि-माला निकलती थी, जो राजाओं के मस्तक की माला के समान थे तथा जो विश्व की जय-ध्वजा के तुल्य थे ऐसे प्रसिद्ध मखादेव आदि राजाओं से भी (मनु का वंश) सुशोभित था।

३४६. गोस् बम्ब तल दॅव टि
यस लिय रन्दन दिगु य टि
लोव नुगुण कळ पॅ टि
पवर निमि निरिन्दुगेन् सुपिहि टि

अर्थ--जिनकी यशरूपी लता दिशा रूपी यष्टि के सहारे ब्रम्ह-लोक तक पहुंचकर व्याप्त हुई, जिन्होंने लोक में अवगुणों का मर्दन किया, ऐसे श्रेष्ठ निमि राजा भी (मनु वंश में) सुप्रतिष्ठित थे।

३४७. रुपु सेन् बिन्द गिहि णि
लत् देविन्दुगेन् अगमि णि
सव् सिप् केळ पॅमि णि
कुसा रज पर पुरिन् सवॅमि णि

अर्थ--जिन्होंने गहन रिपु सेना का विध्वंस किया, जिन्हें शक्र देवेन्द्र से अग्रमणि प्राप्त हुई, तथा जो सभी शिल्पों की पराकाष्ठा तक पहुंच गये थे, ऐसे कुश राजा भी (मनुवंश की) वंश परम्परा में थे।

३४८. अवबिय नैवै त् वू
दस रज दम् पैवै त् वू
विकुमेन् मह त् वू
ए रम् रजुगेन् ससिरिम त् वू

अर्थ—जिन्होंने अपाय (नरक) भय को दूर किया, जिन्होंने दस राज-धर्मों का पालन किया, तथा जिनका पराक्रम महान् था, ऐसे राम राजा से भी (मनु-वंश) श्रीसम्पन्न था।

३४९. पुन् सन्द किरण ब न्दु
यस सिन् दियत कळ सु दु
सिव् सङ्गरा पुरु दु
ओका वस् पर पुरिन् पर सि दु

अर्थ—जिन्होंने पूर्ण चन्द्र की किरणों के समान अपने यश से जगत को स्वच्छ कर दिया, जिन्हें दान, प्रियवचन, अर्थ-चर्या तथा समानात्म भाव चारों संग्रह-वस्तुओं का अभ्यास रहा ऐसे प्रसिद्ध इक्षवाकु-वंश की परम्परा भी (मनु वंश) में रही।

३५०. मे लेसिन् लोव पैव त
आ रज पर पुरिन् प त
जय सेन नम् यु त
पवर निरिन्देक् वी किम्बुल्व त

अर्थ—इस प्रकार लोक में प्रवृत्त राज-परम्परा में प्राप्त जयसेन नाम का एक श्रेष्ठ राजा कपिल वस्तु नगर में हुआ।

३५१. ओहु पुत्वू नोम द
विकुमेन् रजुन् मन् बि न्द
सीह हनु नम् ल द
रजेक् एपुरेहिम रज सिरि ल द

अर्थ--उस राजा का ही सिंहहनु नाम का एक पुत्र था, जिसने अपने अनल्प पराक्रम से शत्रुओं का मान मर्दन किया था और जिसने उसी कपिल-वस्तु पुर में ही राज्य-श्री को प्राप्त किया था।

सिद्धार्थ के पिता

३५२. रिविकुल सुरतु रे
गत् अमपलेक अयु रे
सिटि पिय तन तु रे
वीय ओहु पित् रजेक् एपु रे

अर्थ--सूर्यवंश रूपी कल्प-वृक्ष में लगे अमृत फल के समान, उस पितृ स्थानीय सिंहहनु का एक पुत्र उस नगर में राजा हुआ।

३५३. लेस सरद दो ना
यस सिन् लोव सु दो ना
सित किलुटु दो ना
नमिन् ए रज वी सु दो ना

अर्थ--शरत् काल की चन्द्रिका की भांति अपने यश से लोक को स्वच्छ बना देने वाले तथा चित्त को निर्मल बनाने वाले उस राजा का नाम शुद्धोदन था।

३५४. मुनिन्दुट तिलोगु रु
लबन लेस पिय तन तु रु
दस पैरैमन् सोन्दु रु
पुरा कप् सुहसक् निर तु रु

अर्थ---त्रैलोक्याचार्य मुनीन्द्र का पितृ-स्थान हासिल करने के लिये उसने एक लाख कल्पों तक सुन्दर दस पारमिताओं की पूर्ति की।

३५५. सुर बम्ब सतुटु को ट
हैम नरनिन्दुन् पसु को ट
ए पिन् पलदेनु को ट
पैमिणि मह रजतुमेकि ए पुर ट

अर्थ---दिव्य-ब्रह्माओं (तक) को संतुष्ट कर, अन्य सभी राजाओं को पीछे छोड़ देने पर जब उस पुन्य-कर्म के फल देने का समय आया तो (शुद्धोदन) उस (कपिल-वस्तु) नगर का महाराजा बना।

सिद्धार्थ की माता

३५६. मवु तन तुरु प ता
बुदु केनकुन्ट निय ता
दन् सिल् गुण इ ता
पुरा कप् सुहसक् सत ता

अर्थ---बुद्ध की माता बनने की इच्छा से उसने एक लाख कल्प तक निरन्तर दान शील आदि गुणों का अतिशय रूप में पालन किया।

३५७. सिरिन् सुरि न्दा वू
यस सिन् पुन् स न्दा वू
ते दिन् दिनि न्दा वू
अन्दुन् सक् नरनिन्दुट दावू

अर्थ—श्री में सुरेन्द्र के समान, यश में पूर्ण चन्द्र के समान, तेज में सूर्य के समान वह अंजन शाक्य नरेन्द्र के यहां उत्पन्न हुई।

३५८. रुसिरिन् त माया
सरिकळ लो अ माया
वन् नेतट माया
रदु युत् वू न मिन् माया

अर्थ—रूप-श्री में स्वयं वह लोक के लिये अमृत के समान थी तथा नेत्रों के लिये माया रूप थी। वह 'माया' नाम वाली राज-दुहिता थी।

३५९. सुदोवुन् रपु पिणि स
ए माया बिसोवुन् कु स
पिळिसन्द गेन सक स
बिहिव मैदि पोदा वेसक् म स

अर्थ—शुद्धोदन राजा के निमित्त से, उस (महा-) माया देवी की कोख में प्रतिसन्धि ग्रहण कर वैशाख महीने की पूर्णिमा के दिन जन्म ग्रहण किया।

३६०. ढुट्ु ढुट्वन् सित ट
सक् विति सैयत् पसु को ट
सपैमिण इन्दु ले स ट
किम्बुलवत् पुरेहि रज सैपत ट

अर्थ---जो कोई देखता उसे ऐसा ही लगता कि सिद्धार्थ कुमार देवेन्द्र के समान् चक्रवर्ती सुख को भी मात करने वाले कपिल-वस्तु नगर के राज्य-सुख को प्राप्त हुए हैं।

३६१. यससिन् सुपिरिसु ढु
कळ तुन् लोवम सव् सु ढु
रज उतुमेक् मे ब न्ढु
वीय सिदु हत् नमिन् परसि ढु

अर्थ---जिन्होंने अपने सुपरिशुद्ध यश से तीनों लोकों को समग्र भाव से स्वच्छता प्रदान की, वे इस प्रकार के, सिद्धार्थ नाम से प्रसिद्ध राजा हुए।

सिद्धार्थ-जन्म

३६२. असुर सुर बम्ब है म
तुटु कैरै नरन् नो हैर म
दक्वा लोवै महि म
ए हिमि सन्द तम उपन् दिनेहि म

अर्थ---उन स्वामीन्द्र ने अपने उत्पत्ति के दिन ही लोक को अपनी महिमा दिखा कर, मनुष्यों सहित तमाम असुरों को, देवताओं को और ब्रह्माओं को संतुष्ट किया।

३६३. सिहि पिट सिट तो सिन्
दिगत नरम्बा दिगैं सिन्
सक् विति रज वे सिन्
गोसिन् सत् पिय वरक् वेसे सिन्

अर्थ—वह जब पृथ्वीतल पर उतरे तो प्रसन्नता पूर्वक दीर्घ दृष्टि से दिशाओं की ओर देख कर चक्रवर्ती राजा की भांति सात कदम चले।

३६४. सुर बम्ब मह स बव
पुदत दैक बुदुवन बव
ते पुलेन् हेन स बव
कीय तम मुलु लोवट अग बव

अर्थ—जब देवताओं और महाब्रह्माओं ने यह देखा कि सिद्धार्थ-कुमार का बुद्धत्व लाभ निश्चित है और उन्होंने उन की पूजा की तो सत्य प्रकट करने वाले वचन से सिद्धार्थ कुमार ने अपने समस्त लोकाग्र होने की घोषणा की।

३६५. सिट सत् मैसि वय स
पलक् बैन्द इन्द नुबकु स
नम् मा पिय सिर स
दिय त किय वीय तमा यस रैं स

अर्थ—(केवल) सात महीने की आयु होने पर ही, आकाश में पालथी मार, बैठ, पिता से नमस्कार करवाया और इस प्रकार अपनी यश-राशि जगत भर में कहलवाई।

३६६. लोवँ हैम सतन् नि ति
ऐर गेन यतत् अडु नै ति
निदन् सत रेक् अै ति
गव् देतुन् गव् योदुन् गैम्बु रैति

अर्थ---चाहे दुनिया के सभी प्राणी (उनमें से) निरन्तर ले जाते रहें तब भी जो कम न हों ऐसे दो तीन गव्युति लम्बे-चौड़े तथा योजन भर गहरे वहां चार खजाने थे।

३६७. हिम गिम् वसन् क ल्
विसुमट सुडुसु सुविस ल्
तुन् पस् सतु मह ल्
ए तुन् पहकुसे हि विसि मनक ल्

अर्थ---सरदी, गर्मी तथा बरसात की तीनों ऋतुओं के लिये तीन, पांच और सात तल्ले वाले तीन योग्य प्रासाद थे। सिद्धार्थ-कुमार इन तीनों प्रासादों में रहते थे।

३६८. तेसु कुलङ्गनन् है र
रजकुल उपन् मन ह र
सुरङ्गन युरु पव र
लियन् सतळिस् दहस् पिरिव र

अर्थ– अन्य कुलाङ्गनाओं को छोड़ राजकुलोत्पन्न, मनोज्ञ, देवप्सराओं के समान सैंतालीस हजार स्त्रियों से घिरी (आगे सम्बन्धित)

यशोधरा

३६९. दिलि रुव मेन् क सुन्
गम्निन् हसुन् मन् सुन्
वू ओहुट सुद सुन्
यसोदर नम् कतक् मेहे सुन्

अर्थ—कंचन रूप सदृश दीप्तियुक्त, गति में हंसों का मान मर्दन करने वाली, यशोधरा नाम की स्त्री उस (सिद्धार्थ कुमार) की भार्य्या थी।

३७०. मुन् वरलस कल ब
सरि वन वतक् नोम लै ब
नुदुटु नो अैसू सु ब
मुहुल केले सिन् मैवी दो बम्ब

अर्थ—जब यशोधरा देवी के केश-कलाप के समान कोई वस्तु न मिली, न देखी गई और न सुनी गई तो ब्रह्मा ने इतने सुन्दर केश-कलाप कैसे बनाये ?

३७१. इन्दुनील् इन्दु वर ट
नैत मे वैनि पैहै मुलु र ट
मोवुन् अैस् मैवुम ट
कुमन पैहैयक् गति द ? एक् को ट

अर्थ—जब समस्त राष्ट्र की इन्द्र-नील मणियों तथा नीलोत्पलों में इस प्रकार की दीप्ति नहीं है तो यशोधरा की आंखों का निर्माण करने के लिये ब्रह्मा ने किन चमकों को एकत्र किया है ?

३७२. दुट्टु दुट्टुवन् ओक न्द
वन मुन् वुवन् पुन स न्द
मवन कल नुब मैं द
अने कुमकट मैवो दो? स न्द

अर्थ-----हर देखने वाले के मन को प्रसन्न करने वाला पूर्ण चन्द्र के समान चेहरा बनाते समय ब्रह्मा ने आकाश-स्थित चन्द्रमा भी न जाने किसलिये बनाया ?

३७३. वट मट सिलुट्टु को ट
गल है कि ली मे किन् व ट
मुन् कर हिरि तुन ट
कुमन उपदेस् लदि द? अैन्दुमट

अर्थ---यशोधरा देवी की गोलाकार, स्निग्ध, छोटी, गरदन की तीन रेखायें खीचनें के लिये पता नहीं ब्रह्मा ने किस वस्तु की अनुकृति की है ?

३७४. गन रन् कुम्बु अयु रु
दुट्टु दुट्टु वनट पियक रु
कळोत् मुन् पियो वु रु
बम्बा बम्बसर वे द? तह वु रु

अर्थ---घने स्वर्ण-कुम्भ के समान, हर द्रष्टा का चित्त आकर्षित करने वाले, यशोधरा के पयोधरों का यदि ब्रह्मा ने निर्माण किया हो तो क्या उसका ब्रह्मचर्य्य सुरक्षित रहा होगा ?

३७५. मोलोक् सिहि लैल् व त
एक् कोट अम्बा पैहे प त
अयुरु मुन् कोमल त
बलव उवमव् सोयत अन् नै त

अर्थ––बहुत सी मृदु, शीतल वस्तुओं का संग्रह कर बनाये गये यशोधरा के प्रभा-पूर्ण कोमल हाथों के आकार की ओर देखो जिनकी कोई उपमा खोजने पर नहीं मिलती।

३७६. सदत् कुम्बु अयु रू
उसुलन पिन् पियोवु रू
इङ्ग सिहिन निबो रू
किवधि अदहा गनिति कवु रू

अर्थ––षड़दन्त हाथी के कुम्भ के समान दोनों पयोधरों का भार उठाने वाला (यशोधरा का) कटि प्रदेश बहुत पतला है––कहने पर इसे कौन सत्य स्वीकार करेगा ?

३७७. कैरै तुनु सिरि रुत्र ट
कळ कम् वेसेस पै स ट
दुन् कलु हु 1 ले स ट
वसारोद मुन् वैजम्बि मोनव ट

अर्थ––शरीर-शोभा अच्छी तरह उत्पन्न कर, (अपने) कृतकर्म-विशेष को प्रकाशित करने के लिये ही मानों ब्रह्मा ने बीच में काला धागा डाल देने की तरह उसकी नाभी के नीचे बालों की एक काली रेखा खींच दी थी।

३७८. रम्ब कन्द गन्दैत् क र
पेरै कळ बम्बहु मेहे व र
नपुरुयि हैम दुरु र
मैवू वैनि अैय वटोर मनह र

अर्थ—ऐसा प्रतीत होता है कि पहले तो महाब्रह्मा ने केले के तने को तथा सुगन्धयुक्त हाथी की सूण्ड को बनाया, लेकिन बाद में उसने इन दोनों में विद्यमान सभी दोषों से विरहित उसकी वृत्ताकार जांघों की रचना की।

३७९. दनन् कळ उन् मतु
दण उतु यु गट रन् उतु
सरि नो वत दैन् युतु
उवम् नै त दुट कियम् मिन् सतु

अर्थ—लोगों को पागल बना देने की सामर्थ रखने वाले घुटनों की उपमा यदि दो सुनहरी ढक्कनों से दी जाय तो वह ठीक नहीं। और भी कोई उचित उपमा दिखाई नहीं देती। बाद में दिखाई देने पर कहूँगा।

३८०. नुव मैद पत पतं ङ्ग
नो दिलेन पहन् सिलुर ङ्ग
उवम् नो कळैकि ल ङ्ग
केसे वणमु द? मोवुन् युग द ङ्ग

अर्थ—जैसे आकाश में सूर्य्य के प्रकाशित होने के समय प्रदीप की दीप्ति अत्यन्त मन्द पड़ जाती है उसी प्रकार आस पास की भी कोई उपमा न दिखाई देने से हम उसकी जंघाओं का वर्णन कैसे करें?

३८१. रू सयुरे प तुल्
नो पै मुन् गे दे प तुल्
के रे यि सत लोब तुल्
कुमक् किय मु द ? मे लोवै कर तुल्

अर्थ--जो रूप सौन्दर्य में अथाह हैं यशोधरा के ऐसे पांवों के तलुओं को देखने से प्राणियों के चित्त में लोभ पैदा होता है। इस लोक में हम किस वस्तु के साथ उपमा दें ?

३८२. नो वसा युवलै से
दैक दैक रिसि नो यन से
रुव अैति कल मे से
किम् द ? नर सुर लोवैयि वेन से

अर्थ--बिना दोनों आंखों को मूंदे बार बार देखने पर भी तृप्ति नहीं होती, ऐसे रूप के रहते, मनुष्य-लोक में और सुर-लोक में अन्तर ही क्या है ?

३८३. नम असू पमण ट
लोबवत मतुरु विल स ट
मुन् रुव वन् ने त ट
लैबेन सग मोक् इता उग ह ट

अर्थ--जिस का नाम सुनने मात्र से ही मन में राग उत्पन्न होता है, ऐसे मन्त्र सदृश यशोधरा-देवी का रूप जब किसी को दृष्टिगोचर हो जाता है तो फिर उसके लिये स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति सहज नहीं रहती।

३८४. मुरङ्गन सरि सि हिरन्
बबलन मोवुन रू सि हिरन्
बैन्दु नो पेम् ब हिरन्
केसे गैलवी येद् द? सस हिरन्

अर्थ--दिव्याङ्गनाओं के समान शोभासम्पन्न, दीप्तियुक्त यशोधरा देवी की रूपश्री को देखकर जो प्रेमभार से बंध गया, ऐसा व्यक्ति इस संसार से मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकेगा ?

३८५. मेलेसिन् लोव मह त्
वियतुन् बसिन् तुति ल त्
पवर रिवि कुल को त्
दविन् मुलु दम्बदिवट अग प त्

अर्थ--इस प्रकार संसार के महान् प्रगल्भ पुरुषों द्वारा प्रशंसित, श्रेष्ठ सूर्य वंश केतु, समस्त जम्बुद्वीप में सर्वाधिक सुन्दर (आगे से सम्बन्धित)

३८६. दैक रुव मे र ङ्गिन्
तोरा गतेव् सस गिन्
बबलन तुनु व ङ्गिन्
पवर ए बि सोलन्दुन् सम ङ्गिन्

अर्थ--इस प्रकार रूप-श्री को देख, दिव्यालोक से चुनी हुई की भान्ति, कृषाङ्गी, तेजवन्ती, प्रवर उस महिषी के साथ (आगे से सम्बन्धित)

३८७. नो है रम दस दि ගෙ හි
පෙන්වා යස ස බව ගෙ හි
අඩු කළ සිරි ස ගෙ හි

३८७. नो है रम दस दि गे हि
पेन्वा यस स बव गे हि
अडु कळ सिरि स गे हि
वि सी वि सि न व वसक् गि हि गे हि

अर्थ---दसों दिशाओं में व्याप्त, भवाग्र तक यश को प्रसारित कर, स्वर्ग-श्री को भी मंद कर सिद्धार्थ कुमार ने २९ वर्ष की आयु होने तक गृहवास किया।

राहुल-कुमार

३८८. सक कुलम्बर ळ स न्द
ए यसोदरा नम् ल न्द
पिन् सिरि पिरि नो म न्द
पवर राहुल कुमरु लत् स न्द

अर्थ---जिस समय उस यशोधरा नाम की देवी ने शाक्य-कुल रूपी आकाश में उदित चन्द्र-लेखा के समान, अनल्प पुण्य-श्री से युक्त, उत्तम राहुल कुमार को जन्म दिया (आगे से सम्बन्धित)

३८९. दैक सिव् पेर निमि ति
हैर रद सैपत सित रु ति
लबन मतु सक् वि ति
सैपत् नोतका सितिन् नो नैव ति

अर्थ---जरा, व्याधि आदि चार पूर्व-लक्षणों को देख, चित्त के लिये प्रिय राज्य-सम्पत्ति का त्याग कर, भविष्य में मिलने वाले चक्रवर्ती राज्य-सुख की ओर भी बिना ध्यान दिये, बिना रुके (आगे से सम्बन्धित)

३९०. इसोरा मैंदुर ट
दिगुकळ पयैद एम वि ट
सन् मैतिन्दु पसु को ट
नैङ्गी कन्तक मगुल् असुपि ट

अर्थ---यशोधरा के भवन की ओर बढ़ाये हुए कदमों को पीछे हटाकर, उसी क्षण छन्न नामक मन्त्री (?) को पीछे लेकर कन्थक नाम के मंगल अश्व की पीठ पर सवार होकर (आगे से सम्बन्धित)

अभिनिष्क्रमण

३९१. निक्मेनु दैक एव र
हळ सन्द सुरन् पुर दो र
पसु पेर दे अत् व र
सुरन् सैट सैट दहस् पिरिव र

अर्थ---अभिनिष्क्रमण करते हुए सिद्धार्थ-कुमार को देख देवताओं द्वारा नगर-द्वार के खोले जाने के समय, आगे-पीछे तथा दोनों ओर साठ साठ हजार देवताओं की मण्डली (थी)।

३९२. दिगु बित कर पहन्
गत् मिणि दण्डु वैट पहन्
हिम्नि सित तुटु पहन्
गेवा तिस् योदुन रै नो पहन्

अर्थ---जब दिशायें आलोकित थीं, जब माणिक्य-दण्डों की मशालों का प्रकाश था उस समय स्वामी (सिद्धार्थ कुमार) अपने चित्त की प्रसन्नता के प्रकाश में ही सूर्य्योदय के प्रकाश से पहले पहल रात ही रात में तीस योजन चले गये।

३९३. अँरुणु रस् प तरव
सह तम्बसिलुन् म तरव
रिवि एत रत तरव
अनोमा नम गङ्गिन् ए तरव

अर्थ—अरुण-रश्मियों का प्रसार करते हुए मुर्गों के बोलने के समय, सूर्य्योदय होते होते सिद्धार्थ कुमार अनोमा नाम की नदी पार कर गये।

३९४. दस पैंरुमन् बुहु टि
पिकणेन् सितेहि नो किलि टि
क्रेलेसेव् हल दिगै टि
मंगुल कडुवेन् कपा केस् वै टि

अर्थ—क्योंकि सिद्धार्थ ने बड़ी कुशलतापूर्वक शुद्धचित्त से दस पारमितायें पूरी की थीं, इसलिये उन्होंने जैसे अपने चित्त के मलों को अपने से दूर किया वैसे ही मंगल-खड्ग से अपने केशों के जूड़े को भी काट डाला।

३९५. लोवट पिय कर णव
महबम्बहु दुन् पम णव
सिवुर गेन मह णव
एतर वन लेस ससर मह णव

अर्थ—लोगों के प्रेम-भाजन (सिद्धार्थ-कुमार) ने महाब्रह्मा द्वारा प्रदत्त चीवर ग्रहण कर संसार रूपी महार्णव पार करने के लिये प्रव्रज्या ग्रहण की।

३९६. पिळिवेत कर त दिन्
हव् रुदु सयक् प ब दिन्
गत् वेन वेन ल दिन्
निवन् महवत सोया नो ल दिन्

अर्थ--लगातार छह वर्ष तक कठोर तपस्या करके भी दूसरे मतों के अनुयाई निर्वाण रूपी महामार्ग को खोजने में असमर्थ होने के कारण (आगे से सम्बन्धित)

३९७. मैदुम् पिळिवेतै सि ट
सैप दी मदक् सिरु र ट
सेना नी गम ट
गोसिन् अजपाल नुग सेव न ट

अर्थ--(सिद्धार्थ कुमार) मध्यम प्रतिपदा में स्थित होकर, शरीर को थोड़ा सा सुखी रख सेनानी नामके निगम में अजपाल न्यग्रोध-वृक्ष की छाया के नीचे (बैंठे)।

३९८. सुजाता नम् ळ न्द
गन रन् तलिय किन् सो न्द
दिव ओद लू नोम न्द
मियुरू किरि पिण्डु गेनत् दुन् स न्द

अर्थ—जिस समय सुजाता नाम की कान्ता ने घनी स्वर्ण-थाली में सुन्दर, दिव्य-ओज लिये हुए पर्य्याप्त, मधुर क्षीर-पायास दिया (आगे से सम्बन्धित)

३९९. किरि पिण्डु नो अडु को ट
एकुन् पणसक् पिडु को ट
वळन्दा उडु गङ्ग ट
तलिय हैर सुब निमिति दैक् म ट

अर्थ—बोधिसत्व ने उस खीर-पायास के ठीक उनंचास कौर बनाकर उसे ग्रहण किया। फिर शुभ-लक्षणों के देखने के लिये उस थाली को नदी के ऊपर की ओर फेंक दिया।

४००. बमुणकु दुन् अत ट
गेनैर कुस तण अट मि ट
गोस् बोतुर मुल ट
सला पैळ दिग बला वैड सि ट

अर्थ—एक ब्राह्मण के द्वारा हाथ में दिये गये आठ मुट्ठी कुशा-ग्रास के तिनकों को ले, बोधि-वृक्ष के नीचे जा, पश्चिम दिशा की ओर मुंह करके बैठे।

४०१. मिहिरा नैगि रुव ट
तुदुसत् विदुरसुन् पि ट
पिट ला बो तुर ट
ये हेन् इन्द सिव् इटन् दैडि को ट

अर्थ—पृथ्वी फाड़कर अच्छी तरह से ऊपर आये चौदह हाथ की लम्बाई-चौड़ाई वाले वज्रासन के ऊपर बोधि-वृक्ष के सहारे चार प्रकार का दृढ निश्चय कर बैठे।

४०२. आ मर सेन् रो से
दस बिम्बरक् एमै से
बिन्द हैर दस दे से
तुमुल् नल पत् पुलुन् रळ से

अर्थ—तब रोष युक्त दस बिम्बर (-संख्या) मार सेना आई और उसने दसों दिशाओं को ऐसे उड़ा दिया जैसे आंधी रुई के फोहे को।

बोधि-लाभ

४०३. पेर यम पेर दव स
नोयेक् कप् केळ सु व ह स
कन्द पिळिवेळ वे से स
पैवति मोहन्दुरु दमा सुल् पि स

अर्थ—तब (सिद्धार्थ कुमार ने) प्रथम याम में ही पूर्व जन्मों के रूप में अनेक करोड़-लाख कल्पों से चली आ रही स्कन्ध-परम्परा-विशेष के बारे में मूढ़ता रूपी अन्धकार का मूलोच्छेद कर दिया।

४०४. मैद यमै लैब दिवै स्
सैव पिळि सन्देहि दन रै स्
दैक सतुवन दव स्
पैवति मोहन्दुरु दमा नोव ल स्

अर्थ—मध्यम याम में दिव्य चक्षु-ज्ञान प्राप्त कर, भविष्य-द्रष्टा हो, प्राणियों की च्युत्ति और उत्पत्ति के बारे में विद्यमान अन्धकार को दूर भगा दिया।

४०५. सुविसि पसाक र
विमसा नैगिन् सैक है र
वत्मन् कल् अत र
वैसुणु मोहन्दुरु पटल दुरु क र

अर्थ——चौबीस प्रत्ययोंके आकार का ज्ञान पूर्वक मनन कर, शंका रहित हो, वर्तमान काल पर पड़े हुए मोहान्धकार को दूर किया।

४०६. पेर बुदुवरन् है म
दुटु लेस दकिन नो है र म
नुव गिन् असम स म
बुदु वै सव् ने गेवा अलु य म

अर्थ——प्रत्यूष काल में पूर्व-बुद्धों द्वारा दृष्ट की भान्ति, सभी अशेष बातों का ज्ञान कर सकने वाली प्रज्ञा से सभी ज्ञेय बातों का ज्ञान प्राप्त कर अनुपम बुद्ध हुए।

४०७. बैळन्दु अमर सिन्
किरि पिडु एकुन् पण सिन्
वेन् अहर दह सिन्
नो गोस् सत् सति यक्म वे से सिन्

अर्थ——(बुद्धत्व लाभ से पूर्व) अमृत युक्त खीर के उन्चास कौर खाकर सात सप्ताह तक फिर किसी भी दूसरे आहार-विशेष को ग्रहण करने की ओर ध्यान नहीं दिया।

धर्मचक्र प्रवर्तन

४०८. दे सू मे स दमिन्
मु द मि यि सतुन् अ दमिन्
सवन् रस् वि दमिन्
गोसिन् बर णै सट बम्ब यै दमिन्

अर्थ--सद्धर्म का उपदेश देकर प्राणियों को अधर्म से मुक्त करने के विचार से, छह वर्ण रश्मियों को प्रसारित करते हुए भगवान् बुद्ध ने ब्रह्मा की प्रार्थना स्वीकार कर वाराणसी की ओर प्रस्थान किया।

४०९. विहिदा बम्ब गो सा
सिव् सस् देसा सक सा
निवन् पुर सल सा
बम्बुन् अट लोस् केळक् नोल सा

अर्थ--ब्रह्म-स्वर जैसे स्वर से घोषणा करके अच्छी तरह चारों आर्य सत्यों को प्रकाशित कर अट्ठारह करोड़ ब्रह्माओं को तुरन्त निर्वाण नगर पहुंचा दिया।

४१०. तुटु कैरै सत स तन्
देसव यि दहम् अैम तन्
सि तै केले सुन् मु तन्
यवा मुलु लो वै सैटक् रह तन्

अर्थ--'प्राणियों के चित्त को प्रसन्न कर सर्वत्र धर्म-प्रचार करो' आदेश देकर भगवान् बुद्ध ने साठ क्लेश-मुक्त (=निर्मल) अरहतों को समस्त लोक में धर्म प्रचारार्थ भेजा।

४११. नो दैन बुदु बल पे र
तवुसन् करत अनद र
दक्वा वरिन् व र
दहस् तुन् पन् सियक् पेळह र

अर्थ—जिन काश्यपादि तपस्वियों को पहले से बुद्ध-बल का ज्ञान नहीं था उन्होंने जब जब तथागत के प्रति अगौरव प्रदर्शित किया तब तब तथागत ने अनेक बार साढ़े तीन हजार प्रातिहारियाँ (=चमत्कार) दिखाये।

४१२. तुन् तवुसन् ए दा
पिरिवर समग समु दा
बव बैन्दुमेन् मु दा
योदा मंग पल रसेहि नोम दा

अर्थ—उस समय उनके अनुयायियों के समूह सहित तीनों तपस्वियों को भवबन्धन से मुक्त कर अनल्प (स्रोतापत्ति-) मार्ग तथा फल का रस प्राप्त करने में लगा दिया।

४१३. ए संग पिरिवर को ट
बम्बसुर नरन् तुटु को ट
सक् रुवन से ब ट
एथिन् वैड रजगहा नुवर ट

अर्थ—उस भिक्षु संघ को अपना अनुचर बना, ब्रह्मा, देवताओं तथा आदमियों को सन्तुष्ट कर चक्र-रत्न के (पृथ्वी पर) उतरने के समान गया-शीर्ष से राजगृह नगर को पधारे।

४१४. सुनि सन्द सन्द मे ने
दहसक् संगुन् रँगे ने
विसल् सल् उय ने
वैड इन्दिति यनु असा एदि ने

अर्थ--सहस्र भिक्षुओं के संघ सहित चन्द्रमा के समान मुनि चन्द्र (तथागत) वैशाली के शालवन में उपस्थित हैं--यह समाचार सुना तो उस दिन (आगे से सम्बन्धित)

राजा बिम्बिसार !

४१५. महसेन पिरि व रा
पिरि अँतुलु पिटि नुव रा
बिम् सर नर व रा
अवुत् वैन्द मुनि सरण तम्ब रा

अर्थ--नगर के भीतर-बाहर महा सेना से घिरे हुए राजा बिम्बिसार ने आकर भगवान् बुद्ध के चरणकमलों में प्रणाम किया।

४१६. उन् सन्द तमन् वे त
सदहम् देसा उन् सि त
केलेसुन् अँर इव त
लोवट दक्वा निवन् मह व त

अर्थ--जिस समय राजा बिम्बिसार पास बैठा था उस समय सद्धर्म का उपदेश कर राजा के चित्त को निर्मल बना, लोगों के लिये निर्वाण के महामार्ग को प्रशस्त किया।

४१७. नर निन्दु सन्द तो से
मह सेनङ्ग गेन एम से
ए नुव रै अबि ये से
निवन् पुर नम् मे येयि यन से

अर्थ—उस नरेन्द्र रूपी चन्द्रमा ने सन्तुष्ट हो उसी क्षण महा सेना मंगवा उस नगर के पास ही एक ऐसा विहार (बनवाना आरम्भ किया) जिसे देख कर लोग कहें कि यह ही निर्वाण-पुर है।

४१८. मल् वतु पळोल् स ल्
पुल् विल् पोकुणु सिहिलै ल्
पन्हल् द दम् ह ल्
पवुरू पळ हेळ विसल् वास ल्

अर्थ—जिनमें पाटली तथा शाल के वृक्ष थे ऐसे पुष्पोद्यानों से युक्त, जिनका जल शीतल था ऐसे पुष्पित तालाबों तथा पुष्करणियों से युक्त, जहाँ पर्णशाला तथा धर्मशाला थीं तथा जहाँ प्रशस्त श्वेत वर्ण चार दीवारी तथा विशाल गोपुर-द्वार था (आगे से सम्बन्धित)

४१९. बम्ब विमनेव् इहि ल्
लम्ब कि कि णि दैल् मुतु लै ल्
सु विसल् मतु म ह ल्
तुमुल् पै है पह पेळिन् मन कल्

अर्थ—जो ब्रह्मा के विमान की भान्ति था, जो प्रशस्त था, जिसमें किंकिणियों तथा मोतियों की झालरें लटकी थीं, जो अति विशाल था, जहाँ ऊपर की मंजिल थी, जो बड़ा था, जो अत्यन्त प्रकाशमान था, जो प्रासाद पंक्तियों से युक्त था तथा जो मनोज्ञ था (आगे से सम्बन्धित)

वेळुवन विहार

४२०. नुब मेन् सता रय
दिलि हेन निति दिवा रय
अयुरु अम ता रय
वेलुवन नम् कैरं वि हा रय

अर्थ—जो तारागणों के सहित आकाश के समान था, जो रात दिन सतत चमकता रहता था, जो अमृत के समान था—ऐसा वेळुवन नामका विहार बनवाया।

४२१. दुन् सन्दैं निरिन्दु स न्द
पिळिगेन मुनिन्दु मन न न्द
दिय पोळोव पिरि सि न्द
गुगुरुवा मुलु पोळोव एकब न्द

अर्थ—उस नरेन्द्र चन्द्र ने जिस समय (उस विहार का) दान दिया तो सभी के चित्त को आनन्दित करने वाले मुनीन्द्र ने जल-पृथ्वी से घिरी हुई समस्त पृथ्वी को एक साथ गुंजा कर उस विहार का प्रतिग्रहण किया।

४२२. दहम् वैसि व स् वा
तुन् दोस् गिम्न् न स् वा
सत सित सतो स् वा
कुसल् बिज पिन् केतेहि इ स् वा

अर्थ—तब तथागत ने धर्मामृत रूपी वर्षा बरसा कर, लोभ-द्वेष-मोह नामक तीनों दोषों रूपी ग्रीष्म का नाश कर, प्राणियों के चित्त को संतुष्ट कर, पुण्य-क्षेत्र में कुशल-कर्मो रूपी बीज बोवाया।

४२३. दहम् सक् पु म्बा
पद सुर बम्बुन सु म्बा
रुवैं गुण बि म्बा
दे सैंट मिस दिटु सिन्दु कल म्बा

अर्थ––धर्म-रूपी शंख बजवा कर, दिव्य ब्रह्माओं द्वारा अपने चरण चुमवा कर, गुणप्रतिबिम्ब दिखा कर बासठ मिथ्या-दृष्टि रूपी समुद्र को क्षुभित कर दिया।

४२४. अवा बिय अवर ण
दक्वा लोवट निसर ण
पहळ कैरैं अपम ण
तमा नव अरहादि बुदु गु ण

अर्थ––उन्होंने अपाय-भय को ढक देने वाले त्रिशरणागमन को लोगों के लिये प्रकाशित कर अपने असीम अर्हत्व आदि नौ बुद्ध-गुणों को प्रकट किया।

४२५. पन्वा दुसिरि सि त
नंवा दहम् जय को त
पेन्वा गुण मह त
लोवट दन्वा तमन् दळ मे त

अर्थ––चित्त को दुश्चरित्रता से मुक्त कर, धर्म रूपी जय-केतु को ऊपर उठा, महान् गुणों का दर्शन कर तथागत ने लोगों के प्रति अपनी दृढ़ मैत्री का परिचय दिया।

४२६. लेसिन् सिहिल म्बया
तेपुलेन् सतन् पो बया
पर वैड अर बया
दियत सिटुवा दहम् टैं म्बया

अर्थ—शीतल जल के समान वचनों से प्राणियों को प्रबुद्ध कर, परोपकार के निमित्त जगत में धर्म-स्तम्भ स्थापित किया।

४२७. ससरट स तुरुवा
केलेसन्दरट मि तुरुवा
सम मेत प तुरुवा
दहम् मह गंग लो वै उ तुरुवा

अर्थ—जन्म मरण रूपी संसार के लिये शत्रुस्वरूप, चित्त के मैल रूपी अन्धकार के लिये सूर्य-स्वरूप तथागत ने सब के प्रति समान मैत्री व्याप्त कर धर्म रूपी महान् नदी का लोक में अवतरण किया।

४२८. तमन् नम अ स् वा
दहम् जय बेर ग स् वा
पिरि सिदु पस स् वा
सोन्दुरु सग पवग मङ्ग स स् वा

अर्थ—तथागत ने अपना नाम सुनवा कर, धर्म की जय-भेरी वजवा कर, (चित्त-) शुद्धि की प्रशंसा करवा कर स्वर्गापवर्ग का सुन्दर मार्ग प्रशस्त किया।

४२९. दहम् सित पु र वा
निव न् पुर दोर ह र वा
मरु मन् दे द र वा
तमा नम नितोर सि हि क र वा

अर्थ——(लोगों के) चित्त में धर्म का पूर्ण प्रवेश कर, निर्वाण-पुर के द्वार को विवृत कर, मार के मान का दलन कर तथागत ने अपने नाम का निरन्तर स्मरण करवाया।

४३०. समवत् सुव ये दी
ए सुव सङ्गट त् गे न दी
मह कुलुणेन् बै न्दी
लेवन् कळ मिस पुदेहि नो बै न्दी

अर्थ——तथागत ने ध्यान-सुख का लाभ कर वह सुख भिक्षु-संघ को भी लाभ करवाया। वे महा करुणा से बंधे थे। लोगों द्वारा की जाने वाली आमिष-पूजा के प्रति उनकी कोई आसक्ति न थी।

४३१. उस् कैरै सिल् पवु र
तर कैरै दहम् कन्द वु र
सङ्ग सव् सै ति प व र
वेसे दम् रज वै मुनि ए वेहे र

अर्थ——शील नामक प्राकार को ऊंचा कर, धर्म रूपी स्कन्धावार को दृढ़ कर, श्रावक-संघ रूपी श्रेष्ठ मन्त्रियों से युक्त हो धर्म-राज मुनि-वर उस विहार में निवास करते थे।

४३२. गोतिन् गोतम नम्
गुणेन् सैदि सम्बुदु नम्
मुलु लोव तमा नम्
मतुरू कळ ए बुदु वैडियो नम्

अर्थ—जो कि गोत्र से गौतम हैं, जो गुणों से युक्त होने के कारण सम्बुद्ध कहे जाते हैं, जिन्होंने समस्त विश्व से अपना नाम मन्त्रवत् जपवा लिया, वह बुद्ध यदि पधारें तो (आगे से सम्बन्धित)

४३३. अपगे रट मेब न्दु
ऐति उवदुरिन् मदकु न्दु
अलपतेहि दिय बि न्दु
ले सिन् नो तिबे थि कीय मैतिस न्दु

अर्थ—हमारे राष्ट्र में इस प्रकार के जितने उपद्रव हैं वे उसी प्रकार लेश मात्र भी नहीं रहेंगे जिस प्रकार कँवल के पत्ते पर पानी की बूंद भी नहीं ठहरती ।

४३४. ए मैतिन्दु बस् अ सा
निरिन्दो वेमिन् स तो सा
यन लेस नोव ल सा
तमन् अतुरिन् रजकु विम सा

अर्थ—उस मन्त्री की बात सुनी तो राजा अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ और उसने तथागत को लिवा लाने के लिये तुरन्त जाने को अपने में से किसी एक राजा के विषय में विचार किया ।

मुनीन्द्र का निमन्त्रण

४३५. तिलो गुरु मुनिन्दु ट
वडना लेसट मे पुर ट
अयदिन लेस ए वि ट
यव यि बिम्सर निरिदु नुवरट

अर्थ--त्रिलोक गुरु मुनीन्द्र को इस नगर में पधारने की प्रार्थना करने के लिये उसी क्षण बिम्बिसार राजा के नगर को जाने के लिये कह (आगे से सम्बन्धित)

४३६. बिम् सर रजुट सो न्द
माहैङ्गी वत् पण्डुरु बै न्द
महाली नम् ल द
निरिन्दु निरिन्दो यैवु एम स न्द

अर्थ--(शेष) राजाओं ने महाली नाम के एक राजा को बिम्बिसार नरेश के लिये सुन्दर, महार्घ भेंट लेकर तुरन्त विदा किया ।

४३७. ए निरिन्दु सन्द ए वि ट
मह सेनङ्ग पिरि वर को ट
पर सिदु मग द र ट
गो सिन् वैद रजगहा नुवर ट

अर्थ--तब उस उत्तम नरेन्द्र ने महासेना को साथ लिये प्रसिद्ध मगध राष्ट्र में पहुंच राजगृह नगर में प्रवेश किया।

४३८. बिम्सर नर इसु रु
दैक रैंगेन गिय विसि तु रु
दक्वा दी पण्डु रु
किया पिळिसन्दर बस् पिय क रू

अर्थ--तब बिम्बिसार नरेश्वर को देख, साथ ले जाई गई विचित्र भेंट दिखा और उसे देकर प्रिय-कर कुशल-समाचार पूछा।

४३९. तम नुवरेहि पैव ति
लेड दुक् किया इक् बि ति
मुनि वडना कैम ति
असुन् दक्वा रैंगेन अनुनै ति

अर्थ--तब उसने अपने (वैशाली) नगर में व्याप्त रोग-दुःख की बात कही और मुनीन्द्र को वहाँ लिवा ले जाने की इच्छा प्रकट कर, राजा की अनुमति प्राप्त की।

४४०. दियहिमि मुनि वेत ट
गोस् वेलुवन वेहे र ट
वडनुव तम पुर ट
केळे आरादना मुनिन्दु ट

अर्थ--फिर उसने वेळुवन विहार में जगत स्वामी मुनीन्द्र के पास पहुंच, अपने नगर को पधारने की प्रार्थना की।

निमंत्रण-स्वीकृत

४४१. असा ए निरिन्दु ब स
विमसा नैणिन् ततु ले स
वन लो वैड पिणि स
मुनिन्दु दैकवी वडन अद ह स

अर्थ---उस राजा का वचन सुन और उस पर तत्वतः विचार कर, भावी लोक-कल्याण के निमित्त मुनीन्द्र ने (वैशाली) पधारने का निश्चय प्रकट किया।

४४२. समगिन् मुनि पव र
पन् सिय रहत् पिरि व र
वडितियि विसल् पु र
असा बिम्सर निरिन्दु पिन् स र

अर्थ---जब पुण्यवान् बिम्बिसार राजा ने यह सुना कि पाँच सौ अर्हत् भिक्षुओं को साथ लिये श्रेष्ठ मुनीवर वैशाली पधारने जा रहे हैं, तो (आगे से सम्बन्धित)

४४३. वडन सुगतिन्दु ह ट
मग सरसमैयि निसिय को ट
सिता वैद वेहेर ट
मेसे दैन्वी ए मुनि सन्दुह ट

अर्थ---उसने यह सोच कि सुगतेन्द्र के जाने के लिये मैं रास्ता ठीक कराऊंगा, विहार आकर मुनेन्द्र को इस प्रकार निवेदन किया।

४४४. हिमिसन्द ! मे पुर सि ट
पस् योदनेक गं तेर ट
ए मग सरह नु ह ट
मदक् बल वयि किया मुनि दु ट

अर्थ--'हे स्वामीन्द्र ! इस नगर से गङ्गा तट पांच योजन की दूरी पर है। थोड़ी सी प्रतीक्षा करें, जब तक मैं यह रास्ता ठीक करा दूं'—इतना मुनीन्द्र को कह (आगे से सम्बन्धित)

४४५. योदन योदन' त रा
करव मिनि मह वेहे रा
बम्ब विमनेव् स रा
नो येक् पुद पेरहरिन् सपु रा

अर्थ--उसने योजन-योजन की दूरी पर महाविहार बनवाये और उन्हें ब्रह्म-विमानों की भान्ति सजा कर अनेक पूजा-परिष्कारों से सम्पूर्ण करवाया।

४४६. अ ट इस् बक् दे प स
मग कणु कटु द सै सै पि स
तना बेर अँस ले स
वना सुदु वैलि अयुरु सन्द रै स

अर्थ--दोनों ओर आठ ऋषभ की चौड़ाई भर रास्ते के झाड़-झंखाड़ कटवा कर उन्हें दूर फिकवाया। फिर उसे भेरी के तल की तरह चिकना-चुपड़ा करवा उस पर चन्द्र रश्मि के समान श्वेत बालू बिछवाया।

४४७. पिरि कुम्बु सुवह से
रम्ब तुरु सदा दे प से
दण पमणक् उ से
पुरा महवत मलिन् सक से

अर्थ--उसने लाखों पूर्ण घट तथा कदली वृक्ष दोनों ओर लगवा उस महामार्ग पर जांघ भर ऊंचे तक फूल बिछवा दिये।

४४८. बन्द पट वैरैं ल्लेन्
यन लेसट सेवनै ल्लेन्
दिलि रन् के हे ल्लेन्
सदा मग दिगटमै सिय ल्लेन्

अर्थ--जिसमें यात्रा छांव में हो सके, इस लिये (बिम्बिसार ने) तमाम रास्ते भर रेशमी वस्त्र बंधवाये और सुनहरी झंडे लगवाये।

४४९. पुद पेर हर मह त
सिटुवा दे पस मह व त
बैन्द मुदुन तै दोहो त
मुनिन्दु वडनट कलैयि दन्वत

अर्थ--महामार्ग के दोनों ओर पूजा-परिष्कार स्थापित करवा बिम्बिसार ने दोनों हाथों को सिर पर जोड़, मुनीन्द्र को पधारने के समय की सूचना दी।

४५०. सित बिय नोवैं तो सिन्
दक्वन विकुम् वे से सिन्
रन् गिरि लेन् कु सिन्
निकुत् वन सी रजकु विल सिन्

अर्थ--चित्त में (किसी भी प्रकार का) भय न रखने वाले, संतोष से विशेष प्राक्रम दिखाने वाले, स्वर्ण-गिरि गुफा के गर्भ से निकलने वाले शेर की तरह (आगे से सम्बन्धित)

४५१. ए मुनि सन्द गमन ट
दिक् करत पय देरण ट
मिहिरा नैगि रुव ट
सुपिपि सत् बुमु पियुम पिट सि ट

अर्थ--जिस समय मुनीन्द्र ने चलने के लिये पृथ्वी पर पैर आगे बढ़ाया, उसी समय पृथ्वी के फट जाने से अच्छी तरह बाहर आये सुपुष्पित सात भौमिक पद्म पर स्थित हो (आगे से सम्बन्धित)

४५२. ला रसिनि रैन्दु उ दु
बन्दु वद कुसुम् पट ब न्दु
दे पट अन्दनय मु दु
वडा ते मण्डुलु वसा मुनि स न्दु

अर्थ--परिशुद्ध लाक्षा रंग में रंगे बंधु जीवक पुष्प के रंग के समान दोहरे मृदु अन्तर-वसन को तथागत ने नाभी और दोनों घुटनों को ढक कर धारण किया।

४५३. बन्दिन रन् दमि ने
कबलु कलबक लेसि ने
बबलन हैम दि ने
पटी दातुवेनि बैन्द अन्द ने

अर्थ—सोने की जंजीर से मूंगों का गुच्छा बांधने की तरह तथागत ने अन्तर वसने के ऊपर निरन्तर चमकने वाली पट्टी बांधी।

४५४. सक्‌वळ गिरि अव ट
सिटि सग सुनेर गिरि पि ट
दिय पोळोव हिम् को ट
रैगत् मिहि मण्डल कम्पा को ट

अर्थ—चारों ओर चक्रवाल पर्वत, सुमेरु पर्वत के ऊपर स्थित स्वर्ग तथा जल-पृथ्वी की सीमा वाले मही-मण्डल को कँपाते हुए धारण किया।

४५५. नुग पल से सुर त्
पैहैयेन् करण दिगु बि त्
किसि किलुटक् नोग त्
सुगत् मह सिवुर गेन ए सुग त्

अर्थ—अपनी प्रभा से दिशाओं रूपी दीवारों को न्यग्रोध फल की भान्ति सुरक्त करने वाले, एक भी धब्बे से रहित, सुगत-चीवर को तथागत ने धारण किया।

५६. रत् पलसे किन् मे र
वट करण मेन् मन ह र
दिलि रन् वन् सिरु र
वसा गेन पेरवै मुनि सिटि व र

अर्थ---जैसे मेरु पर्वत के गिर्द रक्त वर्ण कम्बल लिपटा हुआ, उसी प्रकार प्रज्वलित शरीर पर चीवर धारण किये रहने के समय (आगे से सम्बन्धित)

४५७. नुवन् लद पल वि न्द
ले वन् तुटु वन ले स सो न्द
सवन् सिरु रिन् न न्द
मे से निक् मि णि सवन् रस कन्द

अर्थ---चक्षु-लाभ का फल देकर लोगों के चित्त को सन्तुष्ट करती हुई, भगवत् शरीर से छह वर्ण की सुन्दर रश्मियां इस प्रकार निकलीं।

४५८. इन्दुनिल् मिणि रै सिन्
नव हम् करण विल सिन्
निक्मुणु निल् र सिन्
सैंदिणि हैम सक्वळम वेसे सिन्

अर्थ---जैसे कोई इन्द्रनील मणियों की राशी से नया कर्मान्त करने जा रहा हो ठीक वैसे ही (बुद्ध के शरीर से) निकलने वाली नीली रश्मियों ने सभी चक्रवालों को विशेष रूप से प्रकाशित कर दिया।

४५९. किणि हिरि पेति सम ग
सदन सपुमल् पेति र ग
रन् वन् रस् तर ग
विदा दिव गति दियत एक र ग

अर्थ—मानो कनेर के फूलों की पत्तियों के साथ चम्पा के फूलों की पत्तियों का मिश्रण हुआ हो, ठीक इसी प्रकार स्वर्ग-वर्ण रश्मि-तरङ्गें जगत में एक रूप से फैल गईं।

४६०. बन्दु वन्द पेती निस रु
सन्द वेलेहि सिरि कैरै दु रु
रन् पैहै सर सोन्दु रु
दिवी रन् कैरै दियत नितु रु

अर्थ—बन्धु जीवक पुष्प पत्रों को निस्तेज कर, सन्ध्याकालीन बादलों की श्री शोभा को निष्प्रभा कर, सुन्दर रक्त-वर्ण सार जगत को निरन्तर लोहित वर्ण बनाता हुआ फैल गया।

४६१. तरु वैल पैहै प ह स
कै रै सन्द रैस ट अप ह स
निकुत् सुदु बुदु र स
रिदि रस से दिवी दस दे स

अर्थ—तारावलि की प्रभा को मात कर, चन्द्र रश्मियों का भी उपहास करती हुई, श्वेतवर्ण बुद्ध-रश्मियां रजत-धारा की तरह दसों दिशाओं में प्रसारित हो गईं।

४६२. हैम तैन सक् ब ळे
सळा गेन गेन उतु ळे
लोव तम पैं है के ळे
मदट वन् रस् कन्दक् पत ळे

अर्थ--चक्रवाल में सर्वत्र छटा को व्याप्त करते हुए मजीठी वर्ण के रश्मि-समूह से (तथागत ने) अपनी प्रभा को विश्व भर में व्याप्त कर दिया।

४६३. सोन्दुरु सितियम प ट
विदा लन से दिग् को ट
पबसर रस् रुव ट
दिवि लोवै तवरामिन् पिट त ट

अर्थ--जैसे कोई सुन्दर चित्र-कर्म-युक्त वस्त्र को लम्बा करके खोले वैसे ही (तथागत की) प्रभास्वर रश्मियाँ विश्व को आलिप्त करती हुई बाहर की ओर प्रसारित हुईं।

४६४. सक्वळ गिरि सिर स
पैन गेन पैतिर दस दे स
दिवी सवणक् र स
नङ्गा हैलि सिय दहस् सुबह स

अर्थ--चक्रवाल पर्वत के शीर्ष को भी लाँघ कर दसों दिशाओं में व्याप्त छह वर्ण की रश्मियाँ सैकड़ों, हजारों तथा लाखों धाराओं के रूप में (चारों ओर) प्रसारित हुईं।

यात्रा-वर्णन

४६५. बेर सिय गोस कर त
वीणा नाद निक् मे त
वस् दण्डु नद गनु त
नो पिम्बै सक् हण्ड दिगत मैडङ्ग त

अर्थ— जिस समय सौ भेरी-वादन का घोष हो रहा था, जिस समय वीणा का नाद बाहर आ रहा था, जिस समय बांस का दण्ड शब्द उत्पन्न कर रहा था तथा जिस समय बिना फूंका हुआ शङ्ख अपनी आवाज से दिशाओं को मर्दित कर रहा था।

४६६. मोन रुन् नद कर त
गि जिन्दुन कुंच नद दे त
तुरङ्गु न् हेस रव त
गम न् नोव रियेहि सक् हण्डल त

अर्थ—जिस समय मोर आवाज लगा रहे थे, जिस समय गजेन्द्र क्रौञ्च नाद कर रहे थे, जिस समय घोड़े हिनहिना रहे थे तथा जिस समय स्थिर खड़े हुए रथों के पहियों से आवाज आ रही थी।

४६७. पवनक् मङ्ग् पिसि त
पवनक् सुवन्द मल् ल त
पवन क् सम कर त
वला पोद विसिरु मल् पोबय त

अर्थ—जिस समय पवन चल रहा था, जिस समय पवन सुगन्धित पुष्पों की सुगन्ध ग्रहण कर रहा था, जिस समय पवन पुष्पों को बराबर बराबर बिछा रहा था तथा जिस समय बादलों की बौछार कुम्हलाये फूलों को तरो-ताजा बना रही थी।

४६८. बुदु रैस् वैद दिग त
तुरु लिय नोयेक् पैहै व त
दिय गोड मल् पिये त
वरल् विद हा मसुन् इपि ले त

अर्थ—जिस समय बुद्ध-रश्मियों का प्रसार होने पर वृक्ष-लताओं ने नाना-वर्ण ग्रहण कर लिये थे, जिस समय जल-पुष्प और स्थल-पुष्प पुष्पित हो रहे थे तथा जिस समय मछलियां पूंछ उठाकर ऊपर आ रही थीं।

४६९. अवि वग सिट दि ले त
पलन् अबरण नद दे त
दिव सेन् नुब सैदे त
वुहुटु दिव मल् देरण विसिरे त

अर्थ—जिस समय स्थित आयुध चमक रहे थे, जिस समय धारण किये हुए आभरण नाद-कर रहे थे, जिस समय आकाश में दिव्य सेना सज्जित हो रही थी तथा जिस समय गिराये गये पुष्प पृथ्वी पर बिखरे हुए थे (आगे से सम्बन्धित)

४७०. उरङ्गन् पेण विद त
मुवन् पेम् केळ केळ ए त
लिहिणि गण नुबप त
पिया विदहा सैदी सिट ग त

अर्थ—जिस समय नागों ने अपना फन फैला रखा था, जिस समय मृग प्रणय-क्रीड़ा करते हुए चले आ रहे थे तथा जिस समय आकाश-स्थित पक्षी अपने पर फैलाये हुए थे (आगे से सम्बन्धित)

४७१. वितरट तम सैप त
सदा सलु बरणिन् ग त
मुनि वडन मह व त
दे पस नरयन् अवुत् रैस व त

अर्थ—जिस समय अपनी अपनी सम्पत्ति के अनुरूप पोशाक पहने हुए लोग आकर तथागत के पधारने के मार्ग के दोनों ओर इकट्ठे हुए थे (आगे से सम्बन्धित)

४७२. कणु कटु मुल् इव त्
वीमेन् सिनिदु गुण ग त्
मुनि वडन मह व त्
देरण बेर अैस सेम सम व त्

अर्थ—जिस समय काण्टे-वाण्टे जड़ से उखाड़ दिये जाने से चिकना बना हुआ तथागत के पधारने का मार्ग भेरी-तल के समान सम-तल बन गया था (आगे से सम्बन्धित)

४७३. वसा गेन दिगु बि त्
सुदु निल् वला दिव ग त्
बन्द वियनेव् मह त्
दिनिन्दु मैड रस् नवत् वत् व त्

अर्थ—जिस समय (चारों) दिशाओं रूपी दीवारों को (इधर उधर) भागने वाले सफेद नीले बादलों ने वैसे ही ढक रखा था जैसे सूर्य्य को निस्तेज कर उस पर एक बड़ा भारी वितान तान दिया गया हो (आगे से सम्बन्धित)

४७४. मुनि दैकुमट मह त्
तुट् सितिनवुत् वेत प त्
सुरसेन् तम रैग त्
पसङ्ग तुरुगोस पवत् वत् व त्

अर्थ---जिस समय मुनीन्द्र के दर्शनार्थ अतिप्रसन्न मन से आई हुई देव-सेना अपने लाये हुए पंचांग तूर्य्य-नाद को प्रवर्तित कर रही थी (आगे से सम्बन्धित)

४७५. पिपि तुरु वन मह त्
सोल्वा कुसुम् रद ग त्
सिहि लैल् गुण नुमु त्
सुवद गेन मन्द पवन् वत् व त्

अर्थ---जिस समय बड़े वन के सुपुष्पित पेड़ों के हिलने से गिरे फुलों के रेणु से लदा, शीतलता युक्त, सुगन्धित मन्दपवन बह रहा था (आगे से सम्बन्धित)

४७६. एकलु कैरै दिगु बि त्
रुसिरिन् दन नुवन् ग त्
सुरङ्गन सिट दिमु त्
सुवन्द सुणु गेन विसुरु वत् व त्

अर्थ---जिस समय दिशाओं रूपी दीवारों को एकालोक कर, रूप-श्री से जनता की आंखों को मोहित कर देने वाली देव अप्सरायें अपना लाया हुआ सुगन्धित चूर्ण बिखेर रही थीं (आगे से सम्बन्धित)

४७७. बुदु सिरुरिन् निकु त्
रिवि रैस् मका दिव ग त्
बुदु रैस् दैक दियु त्
बला सिटि सेनङ्ग वैन्द हेत् हेत्

अर्थ—जिस समय बुद्ध-शरीर से निकलने वाली षड़विध रश्मियां सूर्य्य की रश्मियों को निस्तेज कर प्रसारित हो रही थीं और उन कान्ति युक्त बुद्ध-रश्मियों को देखने वाली जनता वन्दना कर रही थी (आगे से सम्बन्धित)

४७८. महरैटि गण अवु त्
पिळिविस निरिन्दु मह व त्
सदनु व वडा तै त्
बुदुन् वडि ती कि या यत् यत्

अर्थ—जिस समय महाराष्ट्र की जनता आ आकर राजा से पूछ पूछ कर महामार्ग को बनाने के लिये बड़ा उत्साह दिखाती हुई और यह कहती हुई कि बुद्ध पधार रहे हैं, चली जा रही थी (आगे से सम्बन्धित)

४७९. सुरपुर येन् अवु त्
अतुरू नोव नुब सिटग त्
बुदु पुदट कळ सि त्
सुरम्ब गण सुवन्द दुम् लत् लत्

अर्थ—जिस समय सुर-पुर से आकर आकाश-स्थित देवप्सरायें बुद्ध-पूजा करने के इरादे से सुगन्धित धूप दे रही थीं (आगे से सम्बन्धित)

४८०. वुवत् एक सत कु ट
वन वैड तका दुर क ट
वडना बैंविने वि ट
निकमै ङ्गत् सन्द मुनिन्दु गम न ट

अर्थ--जिस समय एक प्राणी के भी हित के लिये दूर तक चले जाने वाले मुनीन्द्र ने गमनार्थ प्रस्थान किया (आगे से सम्बन्धित)

४८१. मह बम्ब इदिरि को ट
निक्म यन बम्ब पिरि स ट
नो होत् सन्द मण्डल ट
पसुव पेळ सैदुणु तुरु विलस ट

अर्थ--जैसे महाब्रह्मा को आगे कर ब्रह्म-परिषद पीछे-पीछे चली जा रही हो अथवा चन्द्रमण्डल के पीछे पीछे तारागणों की मण्डली चली जा रही हो (आगे से सम्बन्धित)

४८२. सक् देव् रज पेर ट
कैरै सैदुणु सुर सेनङ्ग ट
नो होत् मिणि रुवन ट
पसुव यन मिणि रुवन् विलस ट

अर्थ--जैसे शक्र देवेन्द्र को आगे कर सुर-सेना पीछे-पीछे चली जा रही हो अथवा किसी प्रधान माणिक्य-रत्न को आगे कर पीछे-पीछे माणिक्य-रत्नों की मण्डली चली जा रही हो (आगे से सम्बन्धित)

४८३. सदत् गज रज ह ट
पसुव यन गज सेनङ्ग ट
वेसेसिन् निसरू को ट
निकुत् संग गण पसुव मुनिन्दु ट

अर्थ—षड़दन्त गजराज के भी पीछे-पीछे चलने वाली गज-पंक्ति को निस्सार बनाते हुए, भिक्षु संघ को पीछे पीछे लिये तथागत ने प्रस्थान किया।

४८४. रजदरुवो सह त्
आदर अैतिव बल व त्
मुनिन्दुट लोवग प त्
नैगु सेसत् पिटमै से स त्

अर्थ—अत्यन्त भक्ति के कारण बहुत से राजकुमारों ने लोकाग्र मुनीद्र के सिर पर श्वेत-छत्र पर श्वेत-छत्र ताने।

४८५. मिनिसत् बवट दि ह
मेम यैयि दनो वन वै ड
सङ्घ गणहट नो क ड
नैगू पन् सिययक्म सुदु कु ड

अर्थ—जो लोग यह जानते थे कि यह (भक्ति प्रदर्शन) ही मनुष्यत्व की दृढ़ अभिवृद्धि है, उन्होंने भिक्षुसंघ के ऊपर लगातार पांच सौ श्वेत छत्र ताने।

४८६. दद कुड कोडि ग न् नो या
सोन्द गन्द दुम् ल न् नो या
पिन् पल बल द न् नो या
मुनि पुदयट व न् नो या

अर्थ––ध्वजायें, छत्र तथा केतु ग्रहण करने वालों ने, सुगन्धित धूप लिये चलने वालों ने; पुण्य-फल के वल के जानकारों ने मुनि की पूजा आरम्भ की।

मुनीन्द्र का स्वागत

४८७. अतिन् रैंगत् कुसुम् दमिन्
सितिन् रैंगत् मुनि स दमिन्
बैतिन् अयेक् अैति प दमिन्
नितिन् मुनिन्दु येति पु दमिन्

अर्थ––हाथ में फूलों की मालायें लिये हुए, चित्त में मुनि का सद्धर्म लिये हुए, कुछ लोग विद्यमान भक्तिपूर्वक मुनीन्द्र की पूजा करते हुए चले जा रहे थे।

४८८. रैळि रैंगेन हेन गिरि पि ट
दुळि गंगुल् हैलि विलस ट
तिळि अयेक् मुनि पुदय ट
पिळि सिसारति हिस व ट

अर्थ––बुद्ध की पूजा से सन्तोष प्राप्त करने वाले कुछ जन पर्वत के ऊपर से तरंगों सहित गिरने वाली ज्योतिर्मय नदी-धारा के समान अपने सिर के चारों ओर वस्त्रों को घुमाते थे।

४८९. मुनि पुदयट सतो सेया
पुदबडु गेन एम सेया
ओद वैंडि सिन्दु रळ सेया
रैस् वेति मङ्ग दे प सेया

अर्थ--मुनीन्द्र की पूजा से संतोष प्राप्त करने वाली जनता ने मार्ग के दोनों तरफ पूजा-भाण्डों का ऐसा ढेर लगा दिया था मानों ओजवान् समुद्र की लहरें बढ़ आई हों।

४९०. नैवति गंगक् से सिन्दु वै न्द
कैमति वै सिट रज सेन् मै न्द
रुवैति लियन् सह लद सो न्द
न ट ति अयेक् बहु रू बै न्दु

अर्थ--जैसे समुद्र के पास पहुंच कर नदी आकर रुक जाती है उसी प्रकार राज सेना के बीच स्थित ऐसे तरुण जिनकी इच्छा होती थी सुन्दर रूपवती स्त्रियों के साथ नाना प्रकार के रूप (चेहरे) बांध नाचते थे।

४९१. नैणैति द नो सिट वेन वे न
विमति नो वी अदहा गे न
कैमति लेसिन् कव् बैन्द गे न
कियति बुदुन् गुण तैन तै न

अर्थ--ज्ञानी जन सन्देह रहित हो श्रद्धायुक्त चित्त से पृथक-पृथक यथारुचि कवितायें रच रचकर स्थान स्थान पर बुद्ध का गुणानुवाद करते थे।

४९२. तद दुक् दुर ल न् नोया
सग मोक् सैप दे न् नोया
मोहुम वेतैयि द न् नोया
वैन्द वैन्द बिम हे न् नोया

अर्थ--भीषण दुःख दूर करने वाले, स्वर्ग मोक्ष रूपी सम्पत्ति दे सकने वाले यही भगवान् बुद्ध हैं--इस बात के जानकार लोग जमीन पर गिर गिर कर नमस्कार करते थे।

४९३. मुनि गुण दस दिग वी दे
तु टु वू सत सित पै दे
नो असन लेस अपवा दे
केरेति पसंग तुरु ना दे

अर्थ--तथागत की गुण चर्चा दसों दिशाओं में फैलने लगी। सन्तुष्ट चित्त जनता को निन्दा सुनने को नहीं मिलती। वह पंचांग तुर्य-नाद करने लगी।

४९४. अप मुनिन्दुन् गे अपम ण
गुण दैन गेन रैगेन सर ण
बव दुक् वेवयि निसर ण
दमति अथेक् पलन् बर ण

अर्थ--हमारे बुद्ध के असीम गुणों को जानकर त्रिशरण ग्रहण कर, भवदुःख से मुक्त होने के लिये कुछ लोग अपने वस्त्राभूषण तक उछालते थे।

४९५. लोला वडन सित ळद् रू
पला नोयन लेस सोन्दु रू
कला सरिपि सन्द अयु रू
बला गेनम येति मुनि रू

अर्थ—चित्त को आकर्षित करने वाले बालक (सोलह) कला सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर मुनि रूप को लगातार देखकर ही जाते थे।

४९६. मुनि यन मग गेन पिरि बड
गेन दरुवन् गेन् पिरि बड
सल् पिल् वेत सिट मग बड
वन्दिति लियो सिटि मंग बड

अर्थ—जिनके सिरों पर सामान था जो गर्भ से भाराक्रान्त थी, ऐसी स्त्रियों ने सामान से लदी दुकानों के पास खड़ी हो तथागत की वन्दना की।

४९७. वेनिन् वे न म पि पि मळ् सि न्द
रोणिन् रोणम गेन वुत् सो न्द
तैनिन् तैनम अङ्ग नो ल द
वेनिन् वे न म कळो य पु द

अर्थ—तरुण कान्ताओं ने प्रत्येक उद्यान के सुपुष्पित फूलों को तोड़ सुन्दर रेणु-सहित ही लाकर उनसे स्थान स्थान पर पृथक् पृथक (तथागत) की पूजा की।

४९८. बुदु महिमय दैक पू वो
नैत सिटिवन सिट पू वो
वैन्द वैन्द अत सैत पू वो
नैत बुदुबव नो पैतु वो

अर्थ—जिन्होंने बुद्ध की महिमा को जाना था वे जिस स्थित में थे, उसी में नहीं रह सके। उन्होंने हाथों से वन्दना कर अपने हाथों को सुफल किया। उनमें से कोई एक भी ऐसा नहीं था जिस ने बुद्ध-भाव की प्रार्थना न की हो।

४९९. दैक मुनिरुव रस वि न्दो
वैद वेत सिरिपद वै न्दो
बव सैपतैयि नो सिमि न्दो
तम सित केलेसुन् सि न्दो

अर्थ—जिन्होंने तथागत के रूप-रस का पान किया था, जिन्होंने समीप जाकर श्रीचरणों में नमस्कार किया था, तथा जिन्होंने संसार को सुख करके नहीं जाना था उन्होंने अपने चित्त-मलों को नष्ट किया।

५००. अद मदकुत् नो किलि टियो
मन्द ळद किरि बोन पै टियो
नद मुनिरुव दैक अ टियो
बैन्द मुदुनत वैन्द सि टियो

अर्थ—जिनके हृदय एकदम निर्मल थे, जो अभी दूध पीने वाले छोटे-छोटे बच्चे थे, वे भी आनन्द जनक बुद्ध-रूप के दर्शन की आशा से अपने सिरों पर अञ्जलि बांधे स्थित थे।

५०१. देन दनटम रट र टि नी
दैन निसि बडु गैल् पि टि नी
वेन वेन रङ्ग नैव् पि टि नि
गेन एति सम हरु व टि नी

अर्थ--दिये जाने वाले दान के लिये योग्य सामान के जानकार कुछ लोग देश देश से नानाप्रकार की चीजें गाड़ियों पर तथा नौकाओं पर लाद कर लिये चले आते थे।

५०२. वेत् पत् सुरम्बुन् नोम नरम्ब न् नो
नेत् सित् मुनि रू रसेहि तब न् नो
गत् गत् कुड कोडि हैम नो तब न् नो
यत् यत् रजसेन् मुनिन्दु पुद न् नो

अर्थ--जो समीप आई हुई दिव्य अप्सराओं की ओर भी नहीं देखते थे, ऐसे राज भटों के नेत्र-चित्त मुनीन्द्र के रूप-रस का ही पान कर रहे थे। अपने हाथों के छत्र तथा ध्वजाओं को बिना रखे ही वे चलते चलते तथागत मुनीन्द्र की पूजा करते थे।

५०३. मोनवट दिलि मिणि किरुलु पैलै न् दो
मरवट लू कुल गिरि सिरि वि न् दो
मुनिन्दुट वैन्द मुदुन तैन्दिलि बै न् दो
पुद कोट कैटिवम येति नर नि न् दो

अर्थ--जिन के सिरों पर प्रदीप्त माणिक्य किरीट सुशोभित थे, जो सुमेरु-पर्वत को अपना कुल-पर्वत मानकर उस की श्री धारण किये थे, ऐसे राजागण अपने सिरों पर अञ्जलि बांधे मुनीन्द्र की पूजा करते हुए चले जा रहे थे।

५०४. यत् यत् सेत् मुनि विद् दो तनि ने
गत् सित् युत् पुद व द् दो अति ने
कैत् गोत् युत् पर सिद्यो नमि ने
नेत् सित् लत् पलल द्दो ए दि ने

अर्थ—शान्ति स्वरूप मुनीन्द्र का दर्शन करते जाते जाते जिन क्षत्रिय-गोत्र के नाम से प्रसिद्ध लोगों ने अभिमत पूजा-वस्तुओं को दोनों हाथों से ग्रहण किया, उन्होंने उस दिन नेत्र-चित्त होने के फल को प्राप्त कर लिया।

५०५. दैन गेन मुनि सिरि सेनंग ब ळोया
तैन तैन मुनि दैकुमट ओस ळोया
मन पिन वन दसनेहि हस ळोया
वेन वेन देसकट सित नो को ळोया

अर्थ—जो सैनिक मुनीन्द्र की श्री शोभा से परिचित हो गये थे, वे मुनीन्द्र के दर्शनार्थ जगह जगह इकट्ठे हो गये। उनका मन आनन्ददायक दर्शनों में ही रमा था। उन्होंने अन्य नाना दिशाओं में अपने चित्त को नहीं जाने दिया।

५०६. सवन किरण दुळ मुनि मेर वैन् नो
वडन ए सङ्ग गण कुल गिरि वैन् नो
पनन तुरङ्ग पेळ सिन्दु रळ वैन् नो
एय न सेनङ्ग गोड यन सिन्दु वैन् नो

अर्थ—षड्वर्ण किरणों से प्रकाशित मुनीन्द्र मेरु पर्वत के सदृश प्रतीत होते थे। जो (भिक्षु) संघ साथ साथ पधार रहा था, वह सात कुल-गिरियों के समान प्रतीत होता था। अश्वों की जो पंक्ति उछलती जा रही थी, वह मानों समुद्र की लहरें थीं। जो सेना थी वह भी मानों पृथ्वी पर समुद्र लहरें मार रहा था।

५०७. सुरपा मेन् दिलि वेहेरिन् वे हे रा
सत पा सङ्घ गण सह मुनि पव रा
पेळ पा ळिय दैन केरेमिन् अद रा
नर पा दन् दी पुद केळे नि तो रा

अर्थ——देव प्रासाद की भांति ज्योतिर्मय विहारों में (भिक्षु–) संघ सहित श्रेष्ठ मुनि को सन्तर्पित कर, धर्म-देशना क्रम को जानकर, नरेन्द्र ने नित्य दानादि देकर मुनीन्द्र की पूजा की।

गङ्गावतरण

५०८. सतोसिन् पुद केरेमिन् मुनि सन्दु टा
नोलसिन् गोस् वैद मह गं तेर टा
वेसेसिन् मुनि पुद करवन लेस टा
मेलेसिन् दिनसुन् ए विसल पुर टा

अर्थ——हार्दिक प्रसन्नता से मुनीन्द्र की पूजा करते हुए (राजा ने) शीघ्रतापूर्वक महागंगा के तट पर पहुंच मुनीन्द्र की विशेष पूजा करवाने के उद्देश्य से वैशाली के लोगों को इस प्रकार सन्देश भेजा।

५०९. अप अपगे बल पमणिन् मुनिन्दु ट
सैप सपया कळ पुद लैब निसि को ट
स पैमिणि ये मुनि सन्द गङ्ग मे तेर ट
तोप तोपगे बल पमणिन् पुद को ट

अर्थ——हमने अपनी सामर्थ्य भर मुनीन्द्र की सुख-सुविधा का ध्यान रखा। योग्य पूजा आदि प्राप्त कर मुनीन्द्र गंगा के पार हो गये हैं। अब तुम लोग अपनी शक्ति भर मुनीन्द्र की पूजा करो।

५१०. कैन्दवा गेन गोस् मुनिन्दुन् नुवर ट
सोन्दवा मह पुद करवा निसि को ट
सुदवा उवदुरु करवथि सेत र ट
योदवा असनक् नेहेया एम वि ट

अर्थ--(और) मुनीन्द्र को नगर में लिवा ले जाकर, उनकी अच्छी तरह से यथायोग्य महान् पूजा करवा कर, उपद्रवों को शान्त करवा, राष्ट्र को सुखित करो--इस प्रकार का सन्देश उसने उसी समय भिजवाया।

५११. सोन्दवा मह नैव् बैन्द गळ पाया
सिटुवा एहि दिलि पेळ पेळ पाया
नन्दवा सुर सह सिरि वेळ पाया
करवा दिगु पुलु लैति मह पाया

अर्थ--(फिर) अच्छी तरह से महानौकाओं को तैयार करा उनका समूह एक साथ बंधवाया, उस नौका समूह में चमकदार पंक्ति बद्ध खम्भे लगवाये, प्रसन्न चित्त हो दिव्य-विमानों की शोभा को भी निरस्त करने वाला लम्बाई चौड़ाई वाला महा प्रासाद बनवाया।

५१२. बन्दवा सुर सिन्दु बन्दु सुदु विय ने
अदवा वट पट तिर सर ह सि ने
सदवा लम्ब इन्दुवर मल् दमि ने
सिटुवा वट रन् वैट सिणि पह ने

अर्थ--(फिर) आकाश-गंगा के समान श्वेत वितान तनवाया। चारों ओर रेशम के पर्दे डलवाये। बनवाई हुई लम्बी इन्दीवर पुष्पों की माला से अलंकृत किया। चारों ओर स्वर्ण-प्रदीप तथा माणिक्य-प्रदीप रखवाये।

५१३. कोन् कोन् वल मिणि मुतु लैल् ए ल्ला
बन्नन् रन् दद नेलेनि वेवु ल्ला
मन् मिन् पिरि बड सुवन्द कल ल्ला
नन्वन् रन् मिणि किरणि नुदु ल्ला

अर्थ––प्रत्येक कोने पर माणिक्य-मोतियों की झालरें लटकवाईं। बंधी हुई नाना प्रकार की स्वर्ण-ध्वजायें हवा से लहराईं। सुगन्धित लेप लिपवा कर सुगन्धित कराया तथा नाना वर्ण की स्वर्णमाणिक्य की रश्मियों से प्रज्वलित कराया।

५१४. बैन्द रन् मिणि मुतु दिगै रैस् व न वा
सोन्द पट अैतिरिलि माहैङ्ग व न वा
सन्द मण्डलेव् पिरि सत सित पि न वा
मैद मुनिन्दुट निसि अस्नक् प न वा

अर्थ––(फिर) दिशाओं में रश्मियाँ प्रसारित करने वाली स्वर्ण, माणिक्य तथा मोती बंधवाये। सुन्दर, महार्घ रेशमी बिछावन बिछवाये। प्राणियों के चित्त को प्रसन्न करने वाले पूर्ण चन्द्र के समान योग्य एक आसन मुनीन्द्र के लिये बीचोंबीच बिछवाया।

५१५. बिम वसवा दैसमन् मल् इ स् ने
वैड हिन्दुवा मुनिन्दुन् मैद अ स् ने
वट हिन्दुवा रहतुन् सित तो स् ने
सित पिनवा लिय इन् बुदु स स् ने

अर्थ––(फिर) चमेली के फूल बिछवाकर पृथ्वी को उनसे ढक दिया। तब तथागत को मध्य आसन पर विराजमान करवाया। इसके बाद प्रसन्न चित्त हो अर्हतों को चारों ओर बिठवाया। इस प्रकार बुद्धशासन के प्रति चित्त श्रद्धायुक्त किया।

५१६. रत् पलसिन् वट कळ रन् टैम्ब से
रत् पियुमिलु मैद पत् रन् नैव से
रत् पिळिमिणि मैद दिलि गिनि कन्द से
रत् तुरु वैल मैद दिसि पुन् सन्द से

अर्थ---जैसे रक्त-वर्ण कम्बल से कोई रक्त-वर्ण खम्भा घिरा हो, जैसे रक्त-वर्ण पद्मों से कोई सुनहरी नौका घिरी हो, जैसे रक्त-वर्ण स्फटिक माणिक्यों से प्रज्वलित अग्नि-स्कन्ध घिरा हो तथा जैसे रक्त वर्ण तारागणों की पंक्ति के बीच पूर्ण चन्द्र घिरा हो (आगे से सम्बन्धित)

५१७. पियुमिलु वट कळ रत् पियुमक् से
पेति मैद वैद सिटि केसुरु सळा से
केसुरिन् पिरिवैरु रन् केमियक् से
बबलयि सङ्ग पिरिवैरु मुनि सोन्द से

अर्थ---जैसे पद्मों से कोई रक्त वर्ण कँवल घिरा हो, जैसे फूल की पंखुड़ियों से घिरी केसर की छटा हो, जैसे केसर से घिरा सुनहरी कनेर का फूल हो, ठीक वैसे ही संघ के बीच में विराजमान तथागत सुशोभित होते थे।

५१८. पुद लत् मिणि किरुळिन् सुरिन्दु न् ने
विहिदेत् सवणक् रस मुनिन्दु न् ने
पल बित् पह एम वैद दिलि से न् ने
नो कळात् सत् रुवनिन् कळ वै न् ने

अर्थ---जो मुनीन्द्र (तथागत) सुरेन्द्र के माणिक्य-किरीट द्वारा पूजित हैं, उनके शरीर से निकलने वाली छः वर्ण रश्मियों के कारण प्रासादों की छतें और दीवारें इतनी चमकती थीं कि सप्तवर्ण रत्नों से निर्मित न होने पर भी वैसी प्रतीत होती थीं ।

५१९. सोन्दवा रन् पलु विदुलि सह स् से
बन्दवा दद इन्दु दुनु सुवह स् से
वैसुश्रा मेन् गङ्ग नो वै सिदुर स् से
योदवा लिय निसि नैव् पसुप स् से

अर्थ-–सहस्रों विद्युत लताओं की तरह भली प्रकार स्वर्ण-पल्लवों को और सहस्रों इन्द्र धनुषों के समान ध्वजाओं को बंधवा कर उसने यथोचित रूप से (इतनी) नौकाएं पीछे पीछे भिजवाईं कि समस्त गंगा (नदी) छिद्र रहित हो पूर्ण रूप से ढक गई।

५२०. मेलेसिन् सदमिन् नैव् एक रंग टा
रजसेन् हैम सलसा पिरि वर टा
बसि मिन् कर पमणक् गङ्ग दिय टा
मुनिन्दुन् वैन्द रज की मे लेस टा

अर्थ-–इस प्रकार नौकाओं को एकाकार सज्जित करवा और सारी राज्य-सेना को भी चारों ओर खड़ा कर राजा ने गले तक पानी में उतर तथा हाथ जोड़कर इस प्रकार निवेदन किया।

५२१. हैम उवदुरु दुरु कैरै ए र दु न् र ट
स म मेत् मुनि वडना तेक् मे तैन् ट
पेम वडमिन् ओब गुण सिहि कोट को ट
मम नो गोसिन् इन्दीमैयि की नुवर ट

अर्थ-–उन (लिच्छवी) राजाओं के राष्ट्र के सभी उपद्रव दूर कर समान-मैत्री वाले तथागत के वापिस यहाँ पधारने तक आप के गुणों का स्मरण कर करके आप के प्रति अपने प्रेम में वृद्धि करता हुआ मैं नगर वापिस न जाकर यहीं रहूँगा-–यही कहा।

५२२. सङ्घ पिरिवर मुनि दैकुमट ए के णे
लङ्ग दिव नयि कैल पेण कैल पेनु णे
दंग वन मन सुरङ्गन रग सैदु णे
गग सुदु रत् पिपि पियुम्नि् सैदु णे

अर्थ—उस समय (भिक्षु-) संघ से घिरे हुए तथागत के दर्शन करने के निमित्त समीपस्थ दिव्य नाग-समूह के फण दिखाई दिये, मनोज्ञ दिव्य अप्सराओं का नृत्य सज्जित हुआ तथा नदी में श्वेत-वर्ण और रक्तवर्ण पुष्पित कँवल उग आये।

५२३. करणुव लोवट से त
वडिती असा सुग त
सक्विति रज सैप् त
सैपत् वू मेन् सतोसवा सि त

अर्थ—लोक कल्याणार्थ सुगत पधार रहे हैं—यह सुना तो लोगों को इतनी प्रसन्नता हुई जैसे उन्हें चक्रवर्ती राज्य मिल गया हो।

५२४. कप केळ सुवह से
बुदुनै यन नम मे ले से
नो अैसेयि अप मे से
सिटिनु नो येदेयि सिता एम से

अर्थ—उन्होंने सोचा कि लाख करोड़ वर्षों के बीतने पर भी 'बुद्ध' नाम आसानी से सुनने को नहीं मिलता। इसलिये हमारा इस प्रकार यूं ही (बैठे) रहना ठीक नहीं।

५२५. मुनि सन्द वडि न् ने
सितँ मेत कुलुणेकि न् ने
मे अप न र य न् ने
महत् कळ पिनेकँ पल द्रु न् ने

अर्थ--चित्त में मैत्री तथा करुणा होने के ही कारण मुनिचन्द्र (=तथागत) यहां पधार रहे हैं। यह हमारे पूर्वकृत महान् पुण्य कर्मों का ही फल है।

तथागत का स्वागत

५२६. अपिय दुक् वु न् नो
उतुमोय दुर ल न् नो
बुदुहुय वडि न् नो
कवुरु पेरगमन नोकर न् नो

अर्थ--हम ही दुःख भोगने वाले हैं। उस दुःख को दूर करने वाले श्रेष्ठ बुद्ध पधार रहे हैं। तब उन की अगवानी के लिये न जाने वाले हम कौन हैं?

५२७. ए बैविन् अप वेत ट
वडना तिलो गुरु ह ट
अपगे बल पमण ट
करम्हयि मह पुदक् निसि को ट

अर्थ--इसलिये जो त्रिलोक गुरु बुद्ध हमारे यहाँ पधार रहे हैं, उनकी हम अपनी शक्ति भर महत् पूजा करें।

५२८. तुन् सिय योदुन् र ट
नुवरैं उन् दन रैस् को ट
करण मुनि पुदय ट
योदा मग सरहन् ट निसि को ट

अर्थ--उन्होंने तीन सौ योजन के राष्ट्र और नगर की जनता को एकत्र कर मुनि का स्वागत करने के लिये मार्ग को अच्छी तरह ठीक करने को नियुक्त किया ।

५२९. अप हिमियो अप ट
सैरहूय मग निवण ट
ए वैनि सुगतिन्दुह ट
सदनु मग अरुम किम ? मे अप ट

अर्थ--हमारे स्वामीन्द्र ने हमारे लिये निर्वाण का मार्ग प्रशस्त किया। ऐसे सुगतेन्द्र के लिये मार्ग प्रशस्त करने में हमारे लिये क्या अनोखी बात है ?

५३०. ए पुरेहि पटन् को ट
तुन् योदुन गं अतर ट
दमा कणु मुल् कै ट
तना बेर अैस सेम सम को ट

अर्थ--उस नगर से आरम्भ करके गंगातट तक के तीन योजन के मार्ग में से कंकर पत्थर साफ करके भेरी-तल के समान सम बना दिया।

५३१. वैलि एव बिम अतु . ट
रिदी पट से सुद् को ट
अैम तैन मग दे पि ट
पहन् ला रन् रि दी मिणि वै ट

अर्थ--(उन्होंने) बालुका डाल कर उसे भूमि पर फैला कर (भूमि को) रजत-वस्त्र के समान श्वेत कर दिया। मार्ग के दोनों ओर सर्वत्र स्वर्ण, रजत तथा माणिक्य निर्मित प्रदीप रखे।

५३२. बिङगु दैल् गत् मुम ण
सुवन्दैति कुसुम् अ प म ण
पुरवा मग दे र ण
तना अैम तैनम कैरै अतर ण

अर्थ--जिन पर भृंगों के दल गूंज रहे थे ऐसे बेहिसाब सुगन्धित फूलों से मार्ग की भूमि भरवा प्रत्येक स्थल पर आसतरण सा बिछवा दिया।

५३३. नन् पुन् कुम्बु त बा
बम्बा दिगु कैन् ओ ल म्बा
सिदुवा रन र म्बा
लम्बा मल् कैन् अतुरु नो त बा

अर्थ--अनेक पूर्ण कलश रखवाये गये। व्याम भर लम्बे-लम्बे लटकने वाले केलों के गुच्छों सहित कदली-स्तम्भ गड़वाये। बीच में बिना स्थान छोड़े पुष्प मञ्जिरियां लटकवाईं।

५३४. अैद पट वट सु दो
बैन्दै केहेलि रन् कल दो
मग सरसा सो दो
दहस् सत् सत् सियक् निरि दो

अर्थ——चारों ओर श्वेत वस्त्र तान, स्वर्ण-कल-द्यौत ध्वजाओं को बांध, तथा मार्ग को अच्छी तरह प्रशस्त कर सात हजार सात सौ राजागण (आगे से सम्बन्धित)

५३५. मिहि वदयेहि गन्द ट
दिवेन बिङ्गु मेन् इव को ट
तद गिम् कल दि य ट
दिवेन गजसेन् लेसिन् विलक ट

अर्थ——मधु के छत्ते की गन्ध को सूंघ कर दौड़ने वाले भौरों की तरह अथवा कड़ी गर्मी के समय पानी के लिये तालाब की ओर दौड़ने वाली हस्ति-सेना की तरह।

५३६. गैसू मस् गोदुर ट
दिवै एन मसुन् विल स ट
यागेहि किरिबत ट
दिवेन् बमुणन् लेसिन् एक वि ट

अर्थ——(बांसी में) लगाये मांस-खण्ड की ओर भाग कर आने वाली मछलियों की तरह अथवा यज्ञ में दूध-भात (=खीर) के पीछे भागने वाले ब्राह्मणों की तरह।

५३७. पिरि सत् रुवन् गे ट
दोर हळ दन् दीम ट
ओवुनोवुन् पसु को ट
दिवेन् दिळिन्दुन् लेसिन् लोब को ट

अर्थ--जिस में सात रत्न भरे हों ऐसे घर के दरवाजे दान दिये जाने के समय खोले जाने पर जैसे लोभ के वशीभूत एक दूसरे को पीछे धकेलते हुए दरिद्रजन आगे बढ़ते हैं।

५३८. तुन् योदुनम तो से
तुन् पियवरिन् यन से
समग मह पिरि से
गोसिन् वैद गं तेरट ए मै से

अर्थ--(उसी तरह) तीन योजन भूमि तीन कदमों में ही चल आये की भांति वे महान् परिषद् के साथ उसी समय गंगा-तट पर जा पहुंचे।

५३९. एन बुदु रैस् ब ला
पिपेन मेन् विल् कम ला
वेसे सिन् तुटु व ला
नैमदै मुनि सिटि देसट इस ला

अर्थ--बुद्ध-रश्मियों को आता देख वे तालाब में पुष्पित होने वाले कमल की तरह से विशेष रूप से प्रसन्न हुए और उन्होंने तथागत के आने की दिशा की ओर सिर करके वन्दना की।

५४०. मह पुद कटै टियो
हसिरिन् सुरन् सै टियो
बुदुगुण दैव टियो
वडन मुनि देस बला सिटि टियो

अर्थ––महान् पूजा करने की इच्छा से, रूप श्री में देवताओं की समानता करने वाले राजागण, बुद्ध गुणों के प्रति अतीव श्रद्धायुक्त होने के कारण पधारने वाले भगवान् बुद्ध के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

५४१. अहसै सिटि वि दुमेन्
सुर सेन् करण पि दुमेन्
नैव् सेनङ्ग पै दुमेन्
एतेर सिटि नर निन्दुन् ये दुमेन्

अर्थ––बिजली के समान आकाश-स्थित देव-सेना द्वारा पूजित, दूसरे तीर पर स्थित राजागणों के नियोग से नाविक-समूह द्वारा चलाई जाती हुई (नौकाओं से पधारे)।

५४२. रस् वतुरे दैव टि
नरन् कैरै रन् रू सै टि
नैव मुनिन्दुन् पिहि टि
निवन् पुर सेम वुत् गोड दि टि

अर्थ––आदमियों को रश्मि-धाराओं से वेष्ठित कर, उन्हें स्वर्ण-प्रतिमाओं सदृश बना, जिस नौका में मुनीन्द्र विराजमान थे, वह नौका निर्वाण-पुर से आई की भांति स्थल पर प्रतिष्ठित हुई।

५४३. गल पमणक् दिय ट
बैस नरनिन्दुहु एम वि ट
नैव अँदैगेन गोड ट
बुदुन् बावा गतह् ए गोड ट

अर्थ—राजाओं ने गर्दन तक पानी में उतर कर उसी समय नौका को स्थल पर खींच लाकर भगवान् बुद्ध को भूमि पर उतारा।

५४४. पिय निरिन्दु सिर स ट
मिणि बर किरुल् विलस ट
पत् मल् वट बव ट
काल देवल रुसिन् मुदुन ट

अर्थ—जो पिता राजा (शुद्धोदन) के सिर के लिये माणिक्य-भार किरीट के समान हो गये थे और जो काल देवल ऋषी के मस्तक के लिये फूलों की माला बन गये थे (आगे से सम्बन्धित)

५४५. कोसोल् रद रदह स
तुटु कळ पिपि पियुम् ले स
दन पल् अँतु सिर स
ए गै किरि सिन्दुरु पा पै अँ स

अर्थ—जो कोशल नरेश रूपी राज-हंस को सन्तुष्ट करने वाले खिले पुष्प के समान थे, जो धनपाल नामक हाथी के सिर पर सिन्दूर डालने वाले भाजन के समान थे (आगे से सम्बन्धित)

५४६. उसिन् तमहट वै डि
केनकुन नैतैयि कळ ए डि
रिवि सन्द किरण मै डि
ए बन्दु रा असुरिन्दु गे मन् मै डि

अर्थ--जिन्होंने उस राहु असुरेन्द्र के मान को मर्दित किया जिसे इस बात का अभिमान था कि ऊंचाई में कोई उसके समान नहीं है और जिसने रवि तथा चन्द्रमा की किरणों को नीचा दिखाया था (आगे से सम्बन्धित)

५४७. मोळोक् गुण येन् दु रु
गलट द तमा सन् दै रु
उदक् सित् पित् दु रु
लवा वन्दवन नोयेक् गिरि तु रु

अर्थ--जिन (चरणों) के द्वारा अंकित होने से मृदुता रहित (समन्त-कूट) पर्वत की भी चित्तविहीन, ऊष्णता-विहीन नाना पर्वतों तथा वृक्षों द्वारा वन्दना हुई (आगे से सम्बन्धित)

५४८. दिक् कळहोत् मे र ट
उसुलन नैमीगेन सि ट
सक् लकुणेन् लोव ट
रूपै सक्विति ववम दिय त ट

अर्थ--जिन चरणों को (यदि) मेरु के शिखर पर रखने के लिये आगे किया जाये तो मेरु पर्वत उन्हें झुक कर स्वीकार करे और जिन चरणों में 'चक्र' चिह्न का होना (बुद्ध के) जगत का चक्रवर्ति राजा होने की बात को प्रकाशित करता है (आगे से सम्बन्धित)

५४९. गलै वुव ए री य न
पुलुनै वुव रळ नो मण्ड न
सैम लकुणेन् सोब न
सुपिपि सत् बुमु पियुम् पिट य न

अर्थ--जो पत्थर पर भी पड़ने पर उसमें धंस जायें, जो रुई पर भी पड़ने पर उसमें न धंसे, जो सभी मङ्गल-चिन्हों से युक्त तथा जो सुपुष्पित सप्त-भूमिक कमल-दल पर चलने वाले थे (आगे से सम्बन्धित)

५५०. बम्ब सुर नर मु दुन्
विलै पिपि पियुम् सिरि दुन्
सियुमैलि वन न न्दुन्
तबत सिरिपा देरण मुनि न्दुन्

अर्थ--ब्रह्मदेव तथा मनुष्यों के मस्तक रूपी तड़ाग में खिलने वाले, पद्मों की श्री शोभा बिखेरने वाले, सुकुमार, आनन्द के दाता श्री चरण जब मुनीन्द्र पृथ्वी पर रखते थे (आगे से सम्बन्धित)

५५१. बव गिम् हैर ए र ट
वस्वन दहम् वैस् स ट
सैक दुरु कैरै लोव ट
पान पेरनिमिति से एम वि ट

अर्थ--इस राष्ट्र में भव-सागर रूपी ऊष्णता का नाश करने के लिये धर्म रूपी वर्षा बरसाने के असन्दिग्ध पूर्व-निमित्त को प्रगट करने के समान (आगे से सम्बन्धित)

५५२. मुल दुब्बिक् दुक् ट
तद रिवि किरण मय ब ट
ए बैविन् ए मे वि ट
वैदद् नोदेमैयि यनु से देरण ट

अर्थ––दुर्भिक्ष-दुःख के मूल कारण-स्वरूप अवतीर्ण होने वाली प्रखर सूर्य-रश्मियों को पृथ्वी पर उतरने ही नहीं देंगे, कहते हुए की तरह (आगे से सम्बन्धित)

५५३. निल् पैहे कवद गे न
मह गिरि दुदुलु पैन गे न
महसेन् मेन् दिवे न
वसा नुब गंग अन्दुरु कोट गे न

अर्थ––पीले रंग का कवच पहने महान् गिरि-दुर्गों को लांघती-फांदती चली आई सेना की तरह आकाश-गङ्गा को अन्धकार से ढक (आगे से सम्बन्धित)

५५४. अप मुनिन्दु वैडि दे स
नो तिबिय युतुय कुणु रै स
दमवयि कियन ले स
पुरागेन गन गोसिन् दस दे स

अर्थ––जिस देश में हमारे मुनीन्द्र पधारे हैं वहाँ कूड़ा-करकट नहीं रहना चाहिये, इसे दूर फेंकवाता हूँ––कहते हुए की भांति घन-गर्जन से दसों दिशाओं को पूर्ण करते हुए की तरह (आगे से सम्बन्धित)

५५५. विदिनट यक् सेन ग
देवियन् रैंगत् दुनु र ग
गत् नन् पैहै तर ग
सदा इन्दु दुनु रैसिन् सुर म ग

अर्थ---यक्षों की सेना को बींधने के लिये देवताओं द्वारा धारण किये गये धनुष की तरह नाना प्रभा-तरंगों वाले इन्द्र-धनुष की राशी से आकाश को सजा कर (आगे से सम्बन्धित)

५५६. अप हिमि मुनि पुद ट
सिकि नळ रंगन रैङ्गम ट
हळ मलैन्दिलि लेस ट
सदा कोकवैल नैगेन अह स ट

अर्थ---अपने स्वामी मुनीन्द्र की पूजा करने के लिये मोर स्वरूप नर्तक के नृत्य के लिये लाई गई पुष्पाञ्जलि के समान आकाशारूढ़ कूंजों की पंक्ति सजा कर (आगे से सम्बन्धित)

५५७. एलि कैरै विदुलि द लु
पलागेन गन गन कु लु
मुनि पुदयट लकु लु
विदा पत् करण से दिवस लु

अर्थ---बुद्ध की पूजा करने के लिये अलंकृत दिव्य वस्त्र को फैला देने की तरह घने मेघ कूटों को विदीर्ण कर विद्युत-धारा ने प्रकाश कर (आगे से सम्बन्धित)

५५८. हिम वन पेत नैबु लु
इपिल नैगि मेन् गिरि कु लु
अन्दुन् कुलु से क लु
वसा नुब पतळेय गन कु लु

अर्थ—बड़ी-बड़ी हिमालय-वन की पांतों में गिरि-कूटों से उत्पन्न होकर ऊपर उठता सा आकाश को आच्छन्न करने वाली अंधेरी सा, काले मेघों का दल सर्वत्र व्याप्त हो गया।

नगर में शान्ति

५५९. वैसि वैस वतु रु विय
कुणप कुणु हैम दु रु विय
ए पुर पिवितु रु विय
ए वर हैम तुरु लिय द कु रु विय

अर्थ—वर्षा होने से पानी बहने लगा। सारी गंदगी दूर हो गई। नगर पवित्र हो गया। उस समय सभी वृक्ष तथा लतायें अंकुरित हो गईं।

५६०. नो हैर विल् वापी
गं हो द पुर वापी
मह गिम् नि वापी
सतुन् सित सतोस कर वापी

अर्थ—तालाब और वापी तथा नद और नदियाँ सभी भर गईं। भयानक गर्मी शान्त हो गई। प्राणियों का चित्त संतुष्ट हो गया।

५६१. तम तम बल पम ण
सेनंग सह मह रज ग ण
मुनिन्दु सह संग ग ण
पुदा न न् पुदवतिन् अपम ण

अर्थ—सेना सहित महाराजाओं ने अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार संघ सहित तथागत की नानाविध पूजा-वस्तुओं से असीम पूजा की।

५६२. सुर बम्ब सेन् सम ग
पुद योद योदा मन र ग
सैतपी अतर म ग
वूय तुन् दवसे किन् पुर ल ङ्ग

अर्थ—देवताओं तथा ब्रह्माओं की सेना सहित राजागण मनोहर पूजायें करते हुए, बीच मार्ग में विश्रान्ति लेते हुए, तीन दिनों में नगर के समीप आ पहुँचे।

५६३. वत मुनिन्दु पुर वे त
पुद कोट सुर सेनग ए त
उन् दैक बियवै सि त
दिवू यक् सेन नो सिट दस अ त

अर्थ—जिस समय मुनीन्द्र ने नगर में प्रवेश किया, जिस समय दिव्य-सेना पूजा करती हुई चली आ रही थी, उस समय उन्हें देखकर भयभीत होने से यक्ष-सेना खड़ी न रह सकी और दसों दिशाओं में भाग गई।

५६४. हैम रो दुक् प सुन्
वत यत यकुन् पिस सुन्
मुनिन्दुन् बुद्ध स सुन्
निसा सुव पत् वै यत मिनि सुन्

अर्थ——जिस समय यक्ष तथा पिशाच भाग गये, जिस समय सभी तरह के रोग-दुःख नष्ट हो गये, तथा जिस समय मुनीन्द्र बुद्ध के शासन के फलस्वरूप मनुष्य सुखी हो गये (आगे से सम्बन्धित)

५६५. पत् मेन् ए पुर मै द
दहस् सुवह स् रिवि स न्द
दिगु एलि कँरै ए स न्द
पँमिण पुर दोरट सुगतिन्दु स न्द

अर्थ——हजारों लाखों सूर्य्य-चन्द्रमाओं के उस नगर के मध्य प्राप्त होने जैसा प्रकाश करके सुगतेन्द्र चन्द्र (तथागत) ने उस नगर-द्वार पर पहुंच (आगे से सम्बन्धित)

५६६. तमहट मेहे प ता
कळ पिन् कमिन् सैप ता
वेत सिटि निति प ता
अनन्द महतेरिन्दु सन्द अम ता

अर्थ——अपनी सेवा में रहने की याचना करने वाले, उस पुण्य-कर्म के फलस्वरूप नित्य पास ही रहने वाले आनन्द महास्थविर चन्द्र को सम्बोधित कर (आगे से सम्बन्धित)

५६७. यक् बू पिसस् क ळ
उवदुरु दुरिन् दुरु क ळ
अणसक निति पत ळ
नो हैर केळ सुवहसक् सक् व ळ

अर्थ—यक्ष, भूत तथा पिशाचों द्वारा किये जाने वाले उपद्रवों को दूर से ही दूर करके सभी करोड़ों-लाखों चक्रवालों में नित्य आज्ञा चक्र प्रसारित रखने वाले (आगे से सम्बन्धित)

५६८. पवतिन सत से त ट
मे लोव पस्वा दहस ट
किया पुर पिरि त ट
रुवन् मह सुतुर ए तेरिन्दु ट

अर्थ—इस लोक के प्राणियों के कल्याण के लिये पाँच सहस्र वर्ष तक प्रवर्तित रहने वाले रतन महासूत्र का उपदेश (तथागत ने) उस नगर की रक्षार्थ आनन्द स्थविर को किया।

परित्राण-सूत्र

५६९. मिणि पय दिय पु रा
मे पिरित देसा स पु रा
ए दिय इसै मे पु रा
पिरित् करवयि किया इन्दु रा

अर्थ—तब मणि-पात्र में जल भर कर इस परित्राण-सूत्र का सम्पूर्ण पाठ कर, उस जल को इस नगर में छिड़क, उस नगर की रक्षा करने के लिये कहा (आगे से सम्बन्धित)

५७०. सिटि सन्द मुनिन्दु स न्द
निरिन्दो वेभिन् मन न न्द
सिवुरंग सेन् नो म न्द
रैगेन ए पुरेहि योदा मह पु द

अर्थ—जिस समय मुनीन्द्र चन्द्र वहाँ उपस्थित थे, नरेन्द्रों ने प्रसन्न हो, अनल्प चतुरङ्गिनी सेना के साथ उस नगर में महान् पूजा सज्जित कराई।

५७१. नो नैङ्गेन लेस रज स
बिम नो हेन लेस रिविर स
सितियम् कळ दे प स
सोया माहैङ्गि वतिन् निसि ले स

अर्थ—धूलि न उठने देने के लिये तथा सूर्य-रश्मि न पड़ने देने के लिये दोनों ओर चित्रित महार्घ वस्त्र से भली प्रकार ढक कर (आगे से सम्बन्धित)

५७२. लम्ब मल् विदु ले स ट
सदा बिमैं सुदु मल् प ट
पुर मह वे दे पि ट
पहन् ला रन् रिदि मिणि वै ट

अर्थ—विद्युत सदृश लटकने वाले फूल तथा भूमि पर श्वेत पुष्प-वस्त्र बिछवा, नगर के महामार्ग के दोनों ओर स्वर्ण, रजत तथा माणिक्य-प्रदीप रखवाये।

५७३. पुर पेरहर सक स्
कैरै सरहजिन् नो सर स्
बुदुन् सह संग रै स्
अैतुलु नुवरट वडागेन गो स्

अर्थ—नगर में पूजार्थ शोभायात्रा की अच्छी तरह तुरन्त तैयारी करके संघ सहित तथागत को नगर के भीतर लिवा जाकर (आगे से सम्बन्धित)

५७४. दहस् सिय सत् स त्
निरिन्दुन् इदिन मैति यु त्
दिगु पुलुलैति मह त्
सुरिन्दु विजयोत्पायै सिरि ग त्

अर्थ—सात हजार सात सौ सात राजाओं तथा उनके मंत्रियों के वैठने के लिये देवेन्द्र (शक्र) के बैजयन्त प्रासाद की सी शोभा वाली बहुत लम्बाई-चौड़ाई लिये (आगे से सम्बन्धित)

५७५. सुरन् लेस मेर गे
रन् दद ले लेन पल गे
नुब सितियम् र ङ्गे
पैतिरि मिणि कोत् किरेण तर ङ्गे

अर्थ—मेरु पर्वत पर वास करने वाले देवताओं की तरह छत के शिखर पर स्वर्ण ध्वजायें फहराने वाले, आकाश में चित्रित व्याप्त माणिक्य-केतु की रश्मि-तरङ्गों वाले (आगे से सम्बन्धित)

५७६. हिमि सन्द मुदुन दुन्
रन् किरुलु मिणि सिरि दुन्
सत सित कळ न न्दुन्
नुवर मैद मह पाय निरि न्दुन्

अर्थ—स्वामीन्द्र तथागत के चरणों में अपना सिर अर्पण करने वाले राजाओं के स्वर्ण-मुकुटों में जड़ित मणियों की शोभा सदृश प्राणियों के चित्त को प्रसन्न करने वाले नगर के बीच महाप्रासाद में (आगे से सम्बन्धित)

५७७. सिटि सुर सिन्दु से वै द
पिरि सुदु सुदु वियन् बै न्द
दिलेन रन् तरु मै द
मलोलम्बु मुतु लैलिन् कैरैन न्द

अर्थ—प्रविष्ट आकाश-गंगा की तरह परिशुद्ध श्वेत-वर्ण वितान बान्ध, बीच में चमकते हुए सुनहरे तारे, लटकते हुए फूल तथा मोतियों की झालरों से मनोज्ञ बनाकर (आगे से सम्बन्धित)

५७८. दुर लन गनन्द रा
गत् रिवि रसेव उदु रा
रँगत् नेत् पैहै रा
अवट रन् पट तिरेन् अवु रा

अर्थ—घनान्धकार को दूर करने वाली सूर्य-रश्मियों के समान, नेत्रों को चकाचौंध कर देने वाली स्वर्णिम कनात से चारों ओर घेर (आगे से सम्बन्धित)

५७९. सिव् दै गन्द कल ल्
पिरि बड रैगेन् बिमै नि ल्
सितियम् कळ निम ल्
अनैङ्गि बुनु तुरुनु ला मन क ल्

अर्थ—चतुर्विध सुगन्धित आलेप से नील वर्ण भूमि पर निर्मल चित्र चित्रित, अनर्घ, मनोज्ञ भूमि आसतरण बिछवा (आगे से सम्बन्धित)

५८०. लेल मुतु लैल् नो म द
बन्द सेस तिन् मन न न्द
असुनक् ए मण्डु मै द
सदा वैड इन्दिन लेस मुनिस न्द

अर्थ—मुनीन्द्र के बैठने के लिये, अनल्प लीलाओं से युक्त, मोतियों की झालरों वाला, श्वेत छत्र सहित, मनोज्ञ आसन मण्डप के बीचों बीच तैयार कराया।

५८१. सक् रुवन ल दुवा
लेस तम सित पुबु दुवा
गुणेन् पिरि सु दुवा
मुनिन्दु अस्नेहि वडा हि न्दुवा

अर्थ—चक्रवर्ती राज्य प्राप्त होने जैसी प्रसन्नता से अपने चित्त को प्रबुद्ध कर, गुणों से परिशुद्ध बुद्ध को आसन पर विराजमान कराया।

५८२. इदिरि कैरै सितु मि ण
पेळ सदन मेन् मिणि ग ण
सत सित पिय कर ण
वडा हिन्दुवा रहत् संग ग ण

अर्थ--चिन्ता-मणि को आगे रखकर जैसे कोई मणियों की पांति सजाये उसी प्रकार प्राणियों के चित्त के लिये प्रियकर अर्हत (भिक्षु-) संघ को (भी) विराजमान कराया गया।

५८३. तम मिणि किरु लु दो
सिलिलिन् सरण कैरै दो
तबा मुदुनत दो
मुनिन्दु वैन्द उन् नोय निरि न्दो

अर्थ--अपने माणिक्य-मुकुटों से निकलने वाली रश्मियों की (जल-) धारा से मुनीन्द्र के चरणों को धोते हुए की तरह उन राजाओं ने अपने दोनों हाथ मस्तक पर रख मुनीन्द्र की वन्दना की।

५८४. रन् मिणि मुतु पब लु
अबरण पैलन्द सुल कु लु
अैन्द निसि कसी स लु
पसेक उन् नोय रज मैतिमु लु

अर्थ--स्वर्ण, मणि, मोती तथा मूंगों से अलंकृत आभरणों को धारण किये हुए तथा समुचित काशी-वस्त्र पहने हुए सभी राजामात्य भी वहीं पास ही उपस्थित थे।

५८५. सव् सतर नि पु णो
सुरै दुरु लेसिन् दै पु णो
कुल सिरि तै दैमु णो
मुनिन्दु वैन्द उन्नोय बमु णो

अर्थ––सकल शास्त्र निष्णात, सुराचार्य्य (बृहस्पति) की भांति अभिमानी, अपनी कुल-मर्यादा के अनुरूप संयत ब्राह्मण जन भी मुनीन्द्र के सम्मुख हाथ जोड़े खड़े थे।

५८६. दे नेन् सु पि हि टि यो
सिटु तन तुरेहि सि टि यो
ये सेन् नो किलि टि यो
बुदुन् वैन्द एक् पसेक सि टि यो

अर्थ––धन की दृष्टि से सुप्रतिष्ठित, श्रेष्ठी पद पर स्थित, निर्मल कीर्ति वाले सेठ लोग भी बुद्ध को नमस्कार कर एक ओर खड़े थे।

५८७. तैन्नेकत् नोल स् वू
मुनिरू दैकुमै तो स् वू
नोकोट तैन् हि स् वू
सेनङ्ग महं वतुरु से रै स् वू

अर्थ––जो किसी भी विषय में प्रमादी न थे, जो मुनीन्द्र तथागत का दर्शन करके आनन्दित होने वाले थे ऐसे लोगों का समह महान् जल-धारा की तरह एकत्र हुआ। कहीं (तिल धरने को) जगह खाली नहीं रही।

५८८. अहसत् अट दिग त्
सक्वळ गिरिन् अैतुळ त्
नो हैर 'तुरु मन्द कु त्
अवुत् रैस् वूय दिव सेनंग त्

अर्थ—आकाश में, आठों दिशाओं में तथा चक्रवाल पर्वतों के बीच कहीं कुछ भी स्थान शेष नहीं रहा, इतनी देवी-देवताओं की सेना आकर एकत्र हुई।

५८९. सियुम् इन्दि कटु मु न
पमणक ओ बा लन तै न
सैट सैत् तै बै गि न
ए मुरु सिटिय ह सियुम् वेस् गे न

अर्थ—जितनी जगह एक बारीक सुई की नोक घेरती है उतनी थोड़ी सी जगह पर सूक्ष्म वेष धारण कर साठ सत्तर देवता तक एक साथ खड़े रह सकते हैं।

५९०. ए पुर पिरि पिरि वट
कळ तुन् पवुरेकिन् वट
यतिन्दुन् गोस् अ वट
पिरित् पैन् इसि सदेहि मोन वट

अर्थ—पानी से भरी हुई तीन खाइयों से युक्त, तीन प्राकारों से घिरे नगर में जब यतीन्द्र आनन्द स्थविर ने चारों ओर जा-जाकर परित्राण-जल अच्छी तरह से छिड़का (आगे से सम्बन्धित)

५९१. ए पिरित् पैन् अँङ्ग ट
वैदै लेड रोग एम वि ट
दुरु वत किसि नो सि ट
निदा पुबु दिन लेसिन् नैगि सि ट

अर्थ——जिस समय उस परित्राण-जल ने शरीर से स्पर्श किया उसी समय सभी रोग-दुःख दूर हो गये और लोग ऐसे ही उठ खड़े हुए जैसे सोते से जागे हों।

५९२. दनयो ए पुर वर
सैरही रैगेन पिरि वर
तेरिन्दुन् सह ए वर
गोसिन् वन्नुय अैतुलु पुर वर

अर्थ——तब उस श्रेष्ठ नगर के जन तैयार हो, अन्य लोगों से घिरे हुए आनन्द स्थविर के साथ जाकर, नगर के भीतर प्रविष्ट हुए।

५९३. नुवरुन् समग वै द
मुनिन्दुन् सिरि सरण वै न्द
अनन्द तेर हिमि स न्द
ए सब तुळ एक् पसेक उन् स न्द

अर्थ——उन नागरिकों के साथ नगर के भीतर प्रविष्ट हुए आनन्द स्थविर स्वामी-चन्द्र मुनीन्द्र तथागत के श्रीचरणों में नमस्कार कर उस परिषद में एक ओर खड़े हुए।

५९४. रैस् वू मह पिरि स
वेन वेनम सित अदह स
योदमिन् तम दिवै स
सोळोस् रंगंकिन् बला ततु ले स

अर्थ—उस समय तथागत ने उस इकट्ठी हुई परिषद में उपस्थित लोगों के चित्तों की अवस्था को अपनी दिव्य-चक्षु द्वारा सराग, समोह आदि सोलह प्रकार से तत्वतः जान लिया ।

५९५. रैन्दि दत् केसुरु व र
दिलि दिव् केमिन् मन ह र
पोबया मुव तम्ब र
सुवन्द कर मुलु देरण' म्बर तु र

अर्थ—दाँत नामक केसर-भार से रंजित, मनोज्ञ जिह्वा रूपी कनेर से प्रदीप्त, मुखरूपी तामरस से प्रबुद्ध होकर आकाश सहित समस्त पृथ्वी सुगन्धित हो गई ।

५९६. सला मह दम्ब ग स
अवुला सियलु पल र स
योदा गेन अमर स
बेदा देन मेन् लोवट निसि ले स

अर्थ—महान् जम्बु-वृक्षों को हिलाकर, उनके फलों को इकट्ठा कर, उनके रस को अमृत रस से मिलाकर लोगों को सम्यक रीति से बाँट देने की भांति (आगे से सम्बन्धित)

५९७. देरण पेरळा य ट
मतु कोट ए रस रैस् को ट
वैडिवन मिहि रस ट
ए मिहि रस देन लेसिन् लेव्ह ट

अर्थ—पृथ्वी को पलट कर, नीचे का हिस्सा ऊपर करके मधुर-रस से भी बढ़कर स्वादिष्ट रस को प्राप्त कर लोगों को बाँट देने की तरह (आगे से सम्बन्धित)

महारतन-सूत्र

५९८. वन् सवणै मिहि बि न्दु
सत सित अमा रस ब न्दु
बम्ब गोस कैरै सिनि न्दु
रुमन् मह सुत देसत मुनि स न्दु

अर्थ—श्रवणों के लिये मधु-बिन्दु के समान, प्राणियों के चित्त के लिये अमृत की बूंदों के समान स्निग्ध ब्रह्म-घोषणा के साथ मुनीन्द्र तथागत ने महा रतनसूत्र की देशना की।

५९९. बम्ब सुर नर ए वि ट
पैहै दी देसू दहम ट
पैमिणि यह एक वि ट
सुवासू दहसक्म निवण ट

अर्थ—उस समय उपदिष्ट रतन-सूत्र धर्म देशना के प्रति श्रद्धावान हो चौरासी हजार ब्रह्मा-सुर तथा नरों ने एक ही साथ निर्वाण-रस का पान किया।

६००. मेम सुतत सतिये क
मुनि सन्दु देसत लोव रै क
तुटु सत निवन् दै क
अटासू पन् सियक् दह से क

अर्थ—जब मुनीन्द्र लोक की रक्षार्थ सप्ताह भर तक इसी सूत्र की देशना करते रहे तो उस समय प्रसन्न चित्त हो पाँच सौ अट्ठासी हजार प्राणियों को निर्वाण (–सुख) लाभ हुआ।

६०१. मे लेसिन् मुनि लोव ट
पिहिट वै सिटिय दे लोव ट
सैब विन् इन् तो प ट
ए मुनिमय पिळि सरण हैम वि ट

अर्थ—इस प्रकार मुनीन्द्र लोक के, उभय लोकों के रक्षक हुए। इसलिये तुम्हें भी यही मुनीन्द्र सचमुच हर समय शरण-स्थान सिद्ध हुए।

कवि का अनुरोध

६०२. इन् ए बुदुन् व न्दुव
उन् गुण कन्दट पह दुव
उन् सरणट व दुव
ओवुन् सदहम् असव पुरु दुव

अर्थ—इसलिये इन बुद्ध को नमस्कार करो। उनके गुण-स्कन्धों के प्रति श्रद्धावान् हो। उनकी शरण ग्रहण करो। उनके सद्धर्म को सुनने का अभ्यास करो।

६०३. उन् कळ वँड सि तव
ससर दुक् दैक विर तव
उन् दैकुमट प तव
नो गोस् मिस दिट्ठु किलुट्ठु पलि तव

अर्थ--उनके द्वारा किये गये कल्याण-कार्य्यों पर विचार करो। संसार का दुःख देख उस (दुःख) से विरत होओ। मिथ्या-दृष्टि रूपी क्लेशों में न पड़ उनके दर्शन की कामना करो।

६०४. पेवव पो दव स
पन्सिल रकुव दिवि ले स
नो कोट अकुसल् द स
पुरव निति पिन् किरिय वत् द स

अर्थ--उपोसथ दिनों में उपोसथ-व्रत धारण करो। पांच शीलों की प्राणों के समान रक्षा करो। दस अकुशल-कर्म न करो। दस पुण्य क्रिया-वस्तुओं को नित्य पूरा करो।

६०५. तुन् सितम पिवि तुरु
कैरै पुदवतिन् विसि तुरु
करव पुद निर तुरु
दातु बळदा पिळिम बो तुरु

अर्थ--पूर्व-चेतना आदि त्रिविध चित्त को ही पवित्र करो। नाना प्रकार की श्रेष्ठ वस्तुओं से (बुद्ध के शरीर-) धातु दन्त-धातु, प्रतिमा तथा बोधि-वृक्ष की निरन्तर पूजा करो।

६०६. हित अहित सत वे त
वड मिन् कुलुणु मेत् सि त
देन सग मोक् सैप त
पवतु मुनिन्दुन् देसू पिळि वे त

अर्थ--सभी हित-अहित प्राणियों के प्रति करुणा मैत्री की वृद्धि करते हुए स्वर्ग-मोक्ष सुख देने वाले मुनीन्द्र द्वारा उपदिष्ट पथ का अनुसरण करो।

६०७. मे लेसिन् हैम दव स
हैम पिन् पुरा निसि ले स
बुदुवन एन दव स
मेते मुनि रजतुमन् दैक तो स

अर्थ--इस प्रकार प्रति दिन प्रत्येक पुण्य-कर्म को भली प्रकार करते हुए भविष्य में बुद्धत्व लाभ करने वाले मैत्री मुनि-राज को देख संतुष्ट चित्त हो (आगे से सम्बन्धित)

६०८. पुद केरेमिन् नोम न्द
बणे सा उन् ससुन् वै द
हैम केलेसुन् पसि न्द
वसव सैन ही निवन् पुर वै द

अर्थ--अनल्प पूजा करते हुए, धर्म श्रवण कर, उनके बुद्ध-शासन में प्रविष्ट हो, सभी चित्त-मलों का नाश कर, निर्वाण-नगर में प्रविष्ट हो शान्तिपूर्वक रहो।

६०९. समतैस् मुनिन्दु पिरिनिवि वस पटन् ल द
दे द हस् पस ळोसक् हवुरुदु पिरुणु स न्द
दिय गोस् पैतिरि बुवनेक बुज निरन्दु सन्द
पिरि वस् तुनेनि सिरि लक रज बिसेव ल द

अर्थ--समन्त चक्षु मुनीन्द्र (भगवान् बुद्ध) के परिनिर्वाण-वर्ष से आरम्भ करके जब दो हजार पन्द्रह वर्ष पूरे हो गये तो व्याप्त जयघोष वाले राजा भुवनेक बाहू के श्री लंका में राज्याभिषिक्त होने के तीसरे वर्ष में (आगे से सम्बन्धित)

६१०. दिन दिन नो अडु दिन पुद पैवति मनह र
दन मन रन्दन सैदि गेवुयन् सिरिन् स र
वैजम्बेन पसिन्दु मह रयिगम् पुर अत र
बबलन सोन्दुरु बीदागम मह वे हे र

अर्थ--जहाँ प्रतिदिन अनल्प मनोहर बुद्ध-पूजा प्रवर्तित होती थी, जो जनों के मनोरंजन का कारण था, जो शोभा सम्पन्न था, जो गृह-उद्यानों से युक्त था, जो प्रसिद्ध था, जो महाराजग्राम पुर के बीच अवस्थित था, जो प्रकाश-युक्त था, जो सुन्दर था--ऐसे बीदागम महाविहार में (आगे से सम्बन्धित)

६११. कित् यस कोत् दस दिगु दिगु यटग ब न्द
मेत् महनेत् पामुल मह तेरिन्दु स न्द
सेत् कळ मुनिन्दु सन्दु गुण कव् पेदेन् बै न्द
सत् वैड पिणिस मे द केळे सेत् सिलिन् न द

अर्थ--जिनके पास दसों दिशाओं नाम की अग्र यष्ठिका पर बंधा हुआ यशकीर्तिरूपी केतु था, जो महानेत्र प्रासाद मूल के अधिपति थे ऐसे मैत्रेय महास्थविर ने प्राणियों का कल्याण करने वाले मुनीन्द्र (भगवान् बुद्ध) के गुणों को काव्य के छन्दों में बांधकर प्राणियों के कल्याणार्थ इस बुद्धगुणालंकार की भी मैत्री-युक्त चित्त से रचना की।